ऋषि प्रसाद

वर्ष : १०
अंक : ८९
९ मई २०००
सम्पादक : क. रा. पटेल
प्रे. खो. मकवाणा
मूल्य : रू. ६-००

सदस्यता शुल्क

भारत में
(१) वार्षिक : रू. ५०/-
(२) पंचवार्षिक : रू. २००/-
(३) आजीवन : रू. ५००/-

नेपाल, भूटान व पाकिस्तान में
(१) वार्षिक : रू. ७५/-
(२) पंचवार्षिक : रू. ३००/-
(३) आजीवन : रू. ७५०/-
(डाक खर्च में वृद्धि के कारण)

विदेशों में
(१) वार्षिक : US $ 25
(२) पंचवार्षिक : US $ 100
(३) आजीवन : US $ 250

कार्यालय
'ऋषि प्रसाद'
श्री योग वेदान्त सेवा समिति
संत श्री आसारामजी आश्रम
साबरमती, अमदावाद-३८०००५.
फोन : (०७९) ७५०५०१०, ७५०५०११.

प्रकाशक और मुद्रक : क. रा. पटेल
श्री योग वेदान्त सेवा समिति,
संत श्री आसारामजी आश्रम, मोटेरा, साबरमती, अमदावाद-३८०००५ ने पारिजात प्रिन्टरी, राणीप, अमदावाद एवं विनय प्रिन्टिंग प्रेस, अमदावाद में छपाकर प्रकाशित किया।

Subject to Ahmedabad Jurisdiction

अनुक्रम

'ऋषि प्रसाद' के सदस्यों से निवेदन है कि कार्यालय के साथ पत्रव्यवहार करते समय अपना रसीद क्रमांक एवं स्थायी सदस्य क्रमांक अवश्य बतायें।

छोड़ो आशा-तृष्णा को...

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

श्रीमद् आद्य शंकराचार्य ने कहा है :

अंगं गलितं पलितं मुण्डं दशनविहीनं जातं तुण्डम्।
वृद्धो याति गृहीत्वा दण्डं तदपि न मुञ्चत्याशा पिण्डम्॥

'अंग गलित हो गये, सिर के बाल पक गये, मुँह में दाँत नहीं रहे, बूढ़ा हो गया, लाठी लेकर चलने लगा फिर भी आशा पिण्ड नहीं छोड़ती।'

(चर्पटपंजरिका स्तोत्र : ६)

आशा ही जीव को जन्म-जन्मांतर तक भटकाती रहती है। मरुभूमि में पानी के बिना मृग का छटपटाकर मर जाना भी इतना दुःखद नहीं है, जितना तृष्णावान् का दुःखी होना है। शरीर की मौत की छटपटाहट पाँच-दस घंटे या पाँच-दस दिन रहती है, लेकिन जीव तृष्णा के पाश में युगों से छटपटाता आया है, गर्भ से स्मशान तक ऐसी जन्म-मृत्यु की यात्राएँ करता आया है। गंगाजी के बालू के कण तो शायद गिन सकते हैं लेकिन इस आशा-तृष्णा के कारण कितने-कितने जन्म हुए यह नहीं गिन सकते।

बुद्धिमान् बुजुर्गों का कहना है कि यदि सिर के बाल सफेद होने लगें तो समझ लेना चाहिए कि स्मशान में जाने की तैयारी हो रही है। यदि दाँत गिरने शुरू हो जाएँ तो समझ लें कि संसार के भोग अब आपके लिए नहीं हैं। अतः संसार के भोग भोगने की रुचि को मिटाते जाना चाहिए। बुढ़ापा आने पर लकड़ी का सहारा लेने की जरूरत पड़ने लगे तो समझ जाना चाहिए कि एक दिन ये ही लकड़ियाँ इस शरीर को जला देंगी।

अतः हे मानव ! अब तू सावधान हो जा। तुच्छ वासनाओं को छोड़, संसार की आसक्ति को छोड़, संसार से सुख लेने की इच्छा को छोड़ क्योंकि संसार से कोई भी व्यक्ति पूर्ण सुखी होकर नहीं गया है। जिनकी गोद में भगवान श्रीराम स्वयं खेले थे, उन राजा दशरथ को भी संसार ने रुलाया था। अतः संसार से सुख पाने की तृष्णा छोड़। अपने सुखस्वरूप परमात्मा की ओर कदम आगे बढ़ा, अपने मन को समझा :

'ऐ मेरे मन ! आशा करनी ही है तो इस बात की आशा कर कि मेरे ऐसे दिन कब आएँगे, जब मैं अपने परम पद में विश्रान्ति पाऊँगा ? यह संसार मुझे स्वप्नवत् कब भासेगा ? कब मेरे चित्त की तृष्णाओं का नाश हो जाएगा ? कब मेरा चित्त निर्दोष नारायण के ध्यान में मग्न रहने लगेगा ? न जाने कितनी बार माताओं के गर्भों में लटकता आया हूँ। हे शिव ! हे कल्याणस्वरूप ! हे अन्तर्यामी प्रभु ! तू मेरा हाथ पकड़कर मुझे अपने निर्बन्ध, मुक्त स्वभाव में ले चल। हे ईश्वर ! ये बाल सफेद हो गये, लेकिन बुद्धि श्वेत नहीं हुई, शुद्ध नहीं हुई, उसका मायारूपी कालापन नहीं हटा। दाँत गिर गये, लेकिन अभी तक तुच्छ आशाएँ-तृष्णाएँ नहीं गिरीं। हाथ में डंडा आ गया लेकिन हृदय में आपका प्रेम नहीं आया। शरीर जीर्ण हो गया फिर भी मेरी तृष्णाएँ जीर्ण नहीं हुईं। हे मेरे प्रभु ! मुझमें तेरे स्वरूप को पाने की लालसा जगा दे...'

इस प्रकार अपने मन को समझाते हुए प्रार्थना करते जाओ, अपने आपके मित्र बनते जाओ। जो आदमी संसार की तुच्छ वासनाओं को मिटाने का यत्न नहीं करता, वह अपने आपका शत्रु है। जो मनुष्य अपने शरीर की नश्वरता का ख्याल नहीं करता, उसकी बालबुद्धि है। वह अवश्य माया से

ठगा जाता है। मृत्यु के समय पराये तो उसके पराये हैं ही, अपने भी पराये हो जाते हैं और शरीर भी अपना नहीं रहता।

जो मनुष्य ऐसे वर्त्तमान समय-परिस्थिति का दुरुपयोग करके, भविष्य की विषय-वासनाओं एवं ऐहिक सुखों की पूर्ति करने तथा इस नाशवान् शरीर को सुखी करने में जीवन भर लगे रहते हैं, वे 'पापी मनुष्य' के रूप में पहचाने जाते हैं। पापी मनुष्यों की यह पहचान है कि वे अपनी तृष्णा के मुताबिक जगत की परिस्थितियों को अपने अनुकूल करके सुख पाने की इच्छा में ही जुटे रहते हैं। वे क्षणभंगुर शरीर को ही सब कुछ मानने लगते हैं और आत्मा का अनादर करते हैं। वे अपनी आत्मिक शक्तियों का उपयोग भी शरीर के ऐश-आराम में करते हुए उसे बरबाद कर देते हैं।

शंकराचार्यजी हमें सचेत करते हुए कहते हैं :

''तू तुच्छ तृष्णा को, देहाध्यास को, वासनाओं को पोस मत। विषयों के संग से अपना सत्यानाश मत कर। तू तो निर्विषयी, निर्लोभी, निरहंकारी एवं निर्द्वन्द्व पद में स्थित महापुरुषों के वचनों को विचार।''

हे मानव ! कभी-कभी स्मशान में जा और अपने मन को दिखा कि : 'देख ! आखिर तेरा भी यही हाल होनेवाला है। हे मेरे मन ! तेरा यह हाल हो जाए, उसके पहले तू विषय-वासना के पाश को विवेक-बुद्धि से काट दे। संसार के विषयों से वैराग्य कर और परमात्मरस पाने का अभ्यास कर।'

बुद्ध अपने प्रिय शिष्यों से कहते थे :

''यदि मेरा शिष्य बनना चाहते हो, भिक्षु बनना चाहते हो, तो पहले छः महीने तक स्मशान में निवास करो। वहाँ जितने मुर्दे जलाये जाते हों, उनके साथ अपना सादृश्य स्थापित करो कि 'मैं ही जल रहा हूँ। ये सब भी पंचभूतों के बने हैं और मेरा शरीर भी पंचभूतों का ही बना है।' इससे विवेक-वैराग्य जागृत होगा।''

विवेकवान् विरक्त मनुष्य को यदि कोई कहे कि : 'तुम बड़े ही सुन्दर दिख रहे हो...' तो यह सुनकर उसे सुंदरता का अभिमान नहीं होता क्योंकि सुंदरता का परिणाम क्या है, यह उसे पता होता है। उसे सदा ऐसा स्मरण रहता है कि यह सुन्दर चेहरा भी एक मुट्ठी राख बनने की ओर ही जा रहा है। अतः सुन्दरता का गर्व करने से क्या लाभ ?

मानव कितना महान् है ! ...लेकिन इस अभागी तृष्णा ने ही उसे भटका दिया है। अभागी आशा-तृष्णा ही उसे जन्म-मरण के चक्र में फँसाती है।

आज की इच्छा कल का प्रारब्ध बन जाती है इसलिए भोगने की, खाने की, देखने की आशा करके अपने भविष्य को नहीं बिगाड़ना चाहिए। हे मानव ! जीते-जी आशा-तृष्णारहित होकर परमात्म-साक्षात्कार करने का प्रयत्न करना चाहिए।

संसार की वस्तुओं को पाने की तृष्णा में हम दुःखद परिस्थितियों को मिटाने की मेहनत और सुखद परिस्थितियों को थामने का व्यर्थ यत्न करने में ही उलझ गये हैं। अज्ञान से यह भ्रांति मन में घुस गई है कि : 'कुछ पाकर, कुछ छोड़कर, कुछ थामकर सुखी होंगे।' हालाँकि सुख के संबंध क्षणिक हैं, फिर भी उसीको पाने में अपना पूरा जीवन लगा देते हैं और जो शाश्वत् संबंध है आत्मा-परमात्मा का, उसको जानने का समय ही नहीं है। कैसा दुर्भाग्य है ! ऐसी उलटी धारणा हो गई है, उलटी बुद्धि हो गई है।

ईश्वर हमसे तसू भर भी दूर नहीं है। जरूरत है तो केवल उसे प्रगट करने की। जैसे लकड़ी में अग्नि छुपी है, किन्तु उस छुपी हुई अग्नि से भोजन तब तक नहीं पकता, जब तक दियासलाई से अग्नि को प्रकट नहीं करते। जैसे विद्युत्तार में विद्युत्शक्ति छुपी है, किन्तु उस छुपी हुई शक्ति से विद्युत्तार संचारित होकर बल्ब से तब तक प्रकाश नहीं फैलाता जब तक स्विच चालू नहीं करते। ऐसे ही परमात्मा अव्यक्त स्वरूप में सबमें छुपा हुआ है किन्तु जब तक जीव की सारी तुच्छ वासनाएँ ज्ञानरूपी दियासलाई से जल नहीं जातीं, चित्त

वासनारहित नहीं हो जाता तब तक अन्तःकरण में ईश्वरत्व का प्रागट्य नहीं होता।

अतः देर न करो। उठो... अपने-आपमें जागे हुए निर्वासनिक महापुरुषों के, सद्गुरुओं के चरणों में पहुँच जाओ... अपनी तुच्छ इच्छाओं को जला डालो... अपने ज्ञानस्वरूप में जाग जाओ... ऐसे अजर-अमर पद को पा लो कि फिर तुम्हें दुबारा गर्भवास का दुःख न सहना पड़े।

ॐ...ॐ...ॐ...

*

'ऋषि प्रसाद' स्वर्णपदक प्रतियोगिता

'ऋषि प्रसाद स्वर्णपदक प्रतियोगिता' में उत्साह से संलग्न सेवाधारियों में से पहले दस जिन सेवाधारियों की सदस्य संख्या वर्त्तमान में अधिकतम चल रही है उन भाग्यशालियों के नाम निम्नानुसार हैं:

क्रम	नाम	शहर
१	श्रीमती जया कृपलानी	भोपाल
२	श्री अतुल बालुभाई विठलाणी	राजकोट
३	श्री त्रिलोक सिंह	हिसार
४	श्री वजुभाई ढोलरिया	सूरत
५	श्री विमल के. हिंगु	जेतपुर
६	श्री महेशचंद्र शर्मा	कलकत्ता
७	श्री संजयकुमार	चंडीगढ़
८	श्री दिनेशभाई डी. जोशी	अमदावाद
९	श्री राजेश जालान	बिलासपुर
१०	कुमारी नूतन यादव	जलगाँव

...तो आएँ... देर न करें... अभी भी समय है। अभी दो महीने बाकी हैं। आप भी इस प्रतियोगिता में सहभागी होकर दैवी कार्य में जुट जायें और आज ही अपना सेवाधारी क्रमांक और रसीद बुकें 'ऋषि प्रसाद' मुख्यालय, अमदावाद से प्राप्त करें।

नोट : इस प्रतियोगिता में सेवाधारी द्वारा बनाई गयी एक आजीवन सदस्यता दो वार्षिक सदस्यता के बराबर मानी जायेगी।

वाणी ऐसी बोलिये...

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

परद्रव्येष्वभिध्यानं मनसानिष्टचिन्तनम्।
वितथाभिनिवेशश्च त्रिविधं कर्म मानसम्॥
पारुष्यमनृतं चैव पैशुन्यं चापि सर्वशः।
असंबद्ध प्रलापश्च वाङ्मयं साच्चतुर्विधम्॥
अदत्तानामुपादानं हिंसा चैवाविधानतः।
परदारोपसेवा च शारीरं त्रिविधं स्मृतम्॥
(मनुस्मृति : १२.५,६,७)

मनुस्मृति में मनु महाराज कहते हैं कि मानव को सदैव दस दोषों से बचना चाहिए। दस दोषों में तीन मन के, तीन तन के एवं चार वाणी के दोषों का उल्लेख किया गया है।

मन के तीन दोष : (१) पराये धन का चिंतन। (२) दूसरे की हानि करने का चिंतन। (३) मन की मान्यता को महत्त्व देना।

तन के तीन दोष : (१) लोभकृत : धन हड़पना। (२) क्रोधकृत : हिंसा करना। (३) कामकृत : परस्त्रीगमन।

वाणी के चार दोष : (१) कटु भाषण। (२) असंबद्ध प्रलाप। (३) झूठ बोलना। (४) पैशुन्य यानी चुगली करना।

साँप का दंश तो एक बार मारता है किन्तु वाणी का दंश तो मरने के बाद भी एक-दूसरे का वैर ले लेता है। पिछले जन्म का शत्रु इस जन्म में किसी

भी रूप में वैर ले ही लेता है। इसलिये बोलने में हमेशा सावधानी बरतनी चाहिए। चार बातों का आदर करने से दुश्मन भी मित्र हो जाते हैं :

१. घर में कलह के समय क्रोध करनेवाले पर क्रोध न करें, वरन् चुप्पी साध लें।

२. किसीका अपमान न करें। यदि किसीकी निंदा हुई हो तो उसकी ग़ैरहाज़िरी में उसकी प्रशंसा कर दें।

३. जो कुटुम्बी आपसे नहीं बोलता हो, उससे प्रयत्नपूर्वक बोलें।

४. बोलने से पहले हृदय को मधुरता से भर दें।

ये चार बातें जिसके जीवन में हैं उसके शत्रु भी मित्र बन जाते हैं और जो जरा-जरा बात में क्रोध करता है, जरा-जरा बात में रूठ जाता है, वाद-विवाद करता है एवं तिरस्कार करता है उसके मित्र भी शत्रु बन जाते हैं।

इसलिए इस बात का खूब ख्याल रखना चाहिए कि कब बोलना, कितना बोलना, कैसे बोलना और कहाँ बोलना।

बोलने की जगह पर बोलो, चुप रहने की जगह पर चुप रहो, कम बोलने की जगह पर कम बोलो, सुनने की जगह पर सुनो और सुनाने की जगह पर सुनाओ।

जो सुनने की जगह पर सुनता है उसकी अक्ल का दीदार होता है। जो मौन की जगह पर बोलता है उसकी बेवकूफी का प्रदर्शन होता है और जो बोलने की जगह पर चुप हो जाता है वह मार खाता है। ऐसे मूर्ख लोग फिर 'राम-राम' कहें चाहे ब्रह्मज्ञान सुनें, उन्हें कोई विशेष फायदा नहीं होता।

बहुत बोलने से, संसार की बातें बोलने से मौन रहना अच्छा है। यदि बोलना ही हो तो सत्य बोलें, मधुर बोलें, प्रसन्नता के लिए बोलें, हितकर बोलें एवं धर्मानुकूल बोलें। बोलते-बोलते सामनेवाले में परमात्मप्रीति जगाना, सामनेवाले को ब्रह्मविद्या में जगाने के लिये बोलना यह तो सर्वश्रेष्ठ है।

शुकदेवजी महाराज मुनि थे, एकांत में मौन रहते थे लेकिन वे जब बोले तब तमाम श्रोताओंसहित परीक्षित श्रीमद्भागवत-रस में सराबोर हो गये, भगवद्-ज्ञान में जाग गये। अष्टावक्रजी महाराज बोले तो 'अष्टावक्र संहिता' बन गयी। श्रीकृष्णजी बोले तो 'श्रीमद्भगवद्गीता' बन गयी। बोलें तो ऐसा बोलें कि जिससे बोला जाता है, उसकी खबर मिल जाये।

दत्तात्रेयजी महाराज अपने भक्तों से कहते हैं कि जिसकी वाणी में कोई सारगर्भित बात नहीं है अथवा किसीको आश्वासन देने की बात नहीं है, प्रेम नहीं है, आदर नहीं है, मधुरता नहीं है बल्कि कर्कश वाणी है वह तो मानों, बोझा उठाकर घूमता है।

एक थे हसन मियाँ। उन्होंने देखा कि उनका पड़ोसी शहद बेचकर बड़ा पैसेवाला हो गया है। अतः उन्होंने अपनी बीबी को कहा : ''मैं भी अब शहद बेचने का धंधा करूँगा।''

बीबी ने कहा : ''शहद का धंधा बाद में करना। पहले शहद जैसा बोलना, मधुर बोलना तो सीख लें! नहीं तो गड़बड़ हो जायेगी।''

हसन मियाँ बोले : ''अरे! तू मुझे क्या समझाती है ?''

इस प्रकार बीबी को डाँट-फटकारकर निकल पड़ा शहद बेचने। पड़ोसी शहद बेचने जाये उसके पहले ही उठकर शहद बेचने चला जाता। वह 'शहद लो शहद...' की आवाज तो लगाता लेकिन कर्कश वाणी के कारण कोई उससे शहद लेने को तैयार न होता। यदि कोई लेने के लिये मटका उतरवाता भी तो चखकर मुँह मोड़ लेता। जब घूम-घामकर वह घर लौटा तो उसकी बीबी ने पूछा :

''क्यों मियाँ! शहद कितना बिका ?''

हसन मियाँ : ''ग्राहक नालायक हैं, बेवकूफ हैं। पहले मटका उतरवाकर शहद चख लेते हैं फिर नहीं लेते।''

बीबी समझदार थी। उसने कहा : ''गुस्ताख़ी

माफ़ हो, बड़े मियाँ ! जो खुशमिज़ाज हैं, प्रसन्नता एवं मधुरता से बोलते हैं उनकी मिर्च भी बिक जाती है लेकिन बदमिज़ाज एवं कटु वाणीवालों से लोग शहद भी नहीं लेते हैं ।''

कबीरजी ने ठीक ही कहा है :

वाणी ऐसी बोलिये, जो मनवाँ शीतल होय ।
औरन को शीतल करे, आपहुँ शीतल होय ॥

किसीको और कुछ न दे सकें तो कम-से-कम दो मधुर शब्द से, आत्मभाव से सामनेवाले का सत्कार कर दें । इससे उसको भी प्रसन्नता होगी एवं आपका अंतःकरण भी शुद्ध होगा ।

यह समझ लें कि मीठी और हितभरी वाणी दूसरों को आनंद, शांति एवं प्रेम का दान करती है और स्वयं आनंद, शांति एवं प्रेम को खींच लाती है । मधुर एवं हितकर वाणी से सद्‌गुणों का पोषण होता है, मन को पवित्र शक्ति प्राप्त होती है एवं बुद्धि निर्मल बनती है । ऐसी वाणी में भगवान का आशीर्वाद उतरता है और इससे अपना, दूसरों का, सबका कल्याण होता है । इससे सत्य की रक्षा होती है और इसीमें सत्य की शोभा है ।

मुख से ऐसा कटु शब्द कभी मत निकालें जो किसीका दिल दुखावे और अहित करे । कभी असत्य मत बोलें, किसीकी चुगली न करें और असंबद्ध प्रलाप न करें । असंबद्ध प्रलाप अर्थात् समय-परिस्थिति के विपरीत बातें न करें । जैसे, किसीकी मृत्यु का अवसर हो और वहाँ करने लगे किसीकी शादी की बात । ऐसा नहीं होना चाहिए । सही बात भी असामयिक होने से प्रिय नहीं लगती ।

नीकी पै फीकी लगे, बिन अवसर की बात ।
जैसे बीरन में युद्ध में, रस सिंगार न सुहात ॥

बातें करते समय दूसरों को मान देना और आप अमानी रहना यह सफलता की कुंजी है । जो बात-बात में दूसरों को उद्विग्न करता है, वह पापियों के लोक में जाता है ।

मुँह से बात बाहर निकालने से पहले ही उसके परिणाम की कल्पना कर लें ताकि बाद में पछताना न पड़े ।

बोली एक अमोल है, जो कोई बोले जानि ।
हिये तराजू तौलि के, फिर मुख बाहर आनि ॥

हुक्म चलाते हो ऐसा बोलना, चिल्लाते हुए बोलना, अश्लील शब्द बोलना और कटु बोलना ये चार संभाषण के दोष हैं ।

हितकर बोलना, आवश्यकतानुसार बोलना, मधुर बोलना, प्रिय बोलना एवं सत्य बोलना ये वाणी के गुण हैं ।

जैसे रूखा भोजन मनुष्य को तृप्ति प्रदान नहीं कर सकता, वैसे ही मधुर वचनों के बिना दिया हुआ दान भी प्रसन्नता नहीं उपजाता ।

लोगों से मिलते वक्त जो स्वयं बात आरंभ करता है और सबके साथ प्रसन्नता से बोलता है, उस पर सब प्रसन्न रहते हैं ।

आवश्यकता पड़ने पर किसीको दण्ड देते समय भी सांत्वनापूर्ण वचन ही बोलना चाहिए । इस प्रकार आप अपना प्रयोजन तो सिद्ध कर ही लेते हैं और कोई मनुष्य उद्विग्न भी नहीं होता ।

यदि सुंदर रीति से, सांत्वनापूर्ण, मधुर एवं स्नेहयुक्त वचन सदैव बोले जायें तो इसके जैसा वशीकरण का साधन संसार में कोई नहीं है । परन्तु यह सदा स्मरण रखना चाहिए कि अपने द्वारा किसीका शोषण न हो । मधुर वाणी उसीकी सार्थक होती है जो प्राणिमात्र का हितचिंतक होता है । गरीब, अनपढ़, अबोध लोगों की नासमझी का गैरफायदा उठाकर उनका शोषण करनेवाले शुरूआत में तो सफल दिखते हैं किन्तु ऐसे लोगों का अंत अत्यंत खराब होता है । सच्चाई, स्नेह और मधुर व्यवहार करनेवाला कुछ गँवा रहा है, ऐसा किसीको बाहर से शुरूआत में लग सकता है किन्तु उसका अंत अनंत ब्रह्माण्डनायक ईश्वर की प्राप्ति में परिणत होता है ।

*

देवर्षि नारद की सहनशीलता

[नारद जयंती दिनांक : १९ मई २०००]

भगवान ब्रह्माजी के मानसपुत्र हैं दक्ष प्रजापति और नारदजी। दक्ष प्रजापति प्रवृत्तिपरायण पुत्र हैं जबकि नारदजी निवृत्तिपरायण।

सृष्टि-विस्तार के लिए दक्ष प्रजापति ने हर्यश्व नामक दस हजार पुत्र उत्पन्न किये एवं उन्हें भी सृष्टि-विस्तार के लिए संतान उत्पन्न करने की आज्ञा दी। 'भागवत' में कथा आती है कि वे सभी नारायण सरोवर नामक तीर्थ में गये एवं स्नानादि से पवित्र होकर वहाँ तप करने लगे।

नारदजी ने उनके पास जाकर पूछा : ''तुम लोग क्या चाहते हो ?''

उन्होंने कहा : ''पिता की आज्ञा से हम संसार का विस्तार करना चाहते हैं।''

नारदजी : ''अरे हर्यश्वों ! धरती कितनी है और कैसी है ? पहले इसका ज्ञान तो हासिल करो ! फिर संसार के विस्तार का यत्न करो।

देखो, एक ऐसा देश है जिसमें एक ही पुरुष है। एक ऐसा बिल है जिसमें से बाहर निकलने का रास्ता ही नहीं है। एक ऐसी स्त्री है जो बहुरूपिणी है। एक ऐसा पुरुष है जो व्यभिचारिणी का पति है। एक ऐसी नदी है जो आगे-पीछे दोनों ओर बहती है। एक ऐसा विचित्र घर है जो पच्चीस पदार्थों से बना है। एक ऐसा हंस है जिसकी कहानी बड़ी विचित्र है। एक ऐसा चक्र है जो छुरे एवं वज्र से बना हुआ है और अपने-आप घूमता रहता है। अरे मूर्खों ! जब तक तुम लोग अपने सर्वज्ञ पिता के आदेश को यथार्थ समझ नहीं लोगे और उपर्युक्त वस्तुओं को देख नहीं लोगे, तब तक उनकी आज्ञानुसार सृष्टि कैसे कर सकोगे ?''

हर्यश्व जन्म से ही बड़े बुद्धिमान् थे। देवर्षि नारद के गूढ़ वचन सुनकर वे स्वयं ही विचार करने लगे कि : 'देवर्षि नारद का कहना तो सच है। स्थूल शरीर के भीतर लिंग शरीर होता है जिसे साधारणतः जीव कहते हैं। यह लिंग शरीर ही पृथ्वी है और यही आत्मा का अनादि बंधन है। इसको मिटाने का ज्ञान नहीं पाया तो जगत को बनाने के ज्ञान की झंझट में क्यों पड़ना ?

लिंग शरीर अर्थात् वासनाओं का पुंज। वासनाओं के पुंज को मिटाकर परमात्मा को पाने की कला नहीं पायी तो संसाररूपी कीचड़ में क्यों गिरना ? कीचड़ में गिरने से पहले कीचड़ से बाहर आने की कला पा लेना चाहिए।

एक देश अर्थात् एक ही ब्रह्माण्ड, जिसमें एक ही पुरुष है और वह है परब्रह्म परमात्मा। एक बिल है, जिससे बाहर निकलने का रास्ता नहीं है, वह बिल है अन्तःकरणावच्छिन्न अंतःज्योतिस्वरूप चैतन्य, जिसको जान लेने के पश्चात् जीव पुनः संसार में नहीं लौटता। एक स्त्री है, जो दिन भर में हजारों-हजार रूप धारण करती है, वह है बुद्धिरूपी स्त्री। वह पुरुष जो इसका संग करता है, वह है जीव। माया ही दोनों ओर बहनेवाली नदी है, जो सृष्टि भी करती है और प्रलय भी।

पृथ्वी, जल, तेज, वायु, आकाश ये पाँच महाभूत एवं इनके २५ तत्त्वों को मिलाकर घर बना है। भगवान का स्वरूप बतानेवाला शास्त्र हंस के समान नीर-क्षीरविवेकी है जो बंध-मोक्ष, जड़-चेतन को अलग करके दिखा देता है। यह काल ही एक चक्र है जो निरंतर घूमता रहता है। इसकी धार छुरे और वज्र के समान तेज है और यह सारे जगत को अपनी ओर खींच रहा है।

इन सबकी ओर ध्यान न देकर एवं परमात्मप्राप्ति के लिए यत्न न करके संसार की झंझट में क्यों पड़ें ?'

ऐसा सोचकर वे हर्यश्व नारदजी की परिक्रमा करके उस मोक्षपथ के पथिक बन गये जिस पर चलकर पुनः लौटना नहीं पड़ता।

दक्ष प्रजापति को जब इस बात का पता चला कि सबके-सब विरक्त होकर मुक्त हो गये तो उन्होंने सोचा कि मेरी इस संसार की चक्की कौन पीसेगा ? ब्रह्माजी के कहने पर उन्होंने पुनः शबलाश्व नामक हजार पुत्र उत्पन्न किये। नारदजी ने उनको भी उपदेश देकर विरक्त बना दिया।

नारदजी ने कहा : ''धरती पर रहना है तो धरती का ज्ञान, धरती जिसके आधार पर है उसका ज्ञान पाओ। धरती जल के आधार पर, जल तेज के आधार पर, तेज वायु के आधार पर, वायु आकाश के आधार पर, आकाश प्रकृति के आधार पर, प्रकृति परमात्मा के आधार पर है। पहले उस परमात्मा का ज्ञान पा लो, बाद में यह सब झंझटबाजी करना। क्यों मुसीबत मोल ले रहे हो ? संसार बढ़ाने से कोई फायदा नहीं। अंत में ठनठनपाल होकर मरो, उसके पहले सर्व का जो आधार है उसको पा लो। फिर जो होगा, देखा जायेगा।''

नारदजी की ज्ञानसंयुक्त, विचारसंयुक्त बातें सुनकर दक्ष के उन शबलाश्व नाम के पुत्रों का भी विवेक जाग उठा कि : 'आखिर ये संसार बढ़ाओ... संसार बढ़ाओ... कब तक ? पहले तो संसार का जो आधार है उधर जाने का यत्न करना चाहिए।' वे सबके-सब भी विरक्त होकर भगवान नारायण का अनुसंधान कर नारायण तत्त्व को प्राप्त हो गये।

नारदजी बड़े प्रसन्न हुए। जिस गुरु को ईश्वर के रास्ते जानेवाला शिष्य मिल जाता है और वह ईश्वर के रास्ते पर ईमानदारी से चलता है तो गुरु प्रसन्न होते हैं कि यह मुक्त होगा। जैसे बाप बेटे को स्नातक ('ग्रेज्युएट') बनाकर निश्चिन्त हो जाता है, ऐसे ही गुरु उपदेश दें और शिष्य संसार से विरक्त होकर भगवान की तरफ चल पड़े तो गुरु को बड़ी प्रसन्नता होती है।

एक शिष्य भी अगर ईमानदारी से ईश्वर की तरफ चलने लगा तो देर-सवेर मुक्त हो जायेगा। मुक्त हो जायेगा तो चौरासी लाख माताओं की पीड़ा हरने का पुण्य मिलेगा। नहीं तो जन्मेगा-मरेगा और चौरासी लाख माताओं को पीड़ा होगी। अगर एक जीव मुक्त हो गया तो इतनी माताओं की पीड़ा तो घटेगी !

इस आशा में फकीर, संत, सद्गुरु घूमा करते हैं कि मिल जाये कोई अधिकारी... फिर उसकी गढ़ाई करते रहते हैं कि देर-सवेर वह वहाँ पहुँच जायेगा, इसी उद्देश्य से वे महापुरुष लगे रहते हैं।

दक्ष प्रजापति को जब पता चला कि दूसरे बेटों को भी नारदजी ने उपदेश देकर विरक्त बना दिया तो वे बड़े क्रुद्ध हो गये।

महापुरुष किसीके क्रोध से नहीं डरते, श्राप से नहीं डरते, निंदा से नहीं डरते क्योंकि वे समझते हैं कि निंदा एवं क्रोध से तो हमारी शांति एवं समता की परीक्षा होती है, शांति व समता बढ़ाने का अवसर मिलता है।

नारदजी गये दक्ष के पास, तब क्रोध के मारे दक्ष के होंठ फड़कने लगे और वे आवेश में भरकर बोलने लगे।

जिसको जगत सच्चा लगता है उसका थोड़ा-बहुत घाटा हो जाता है तब भी वह परेशान हो जाता है और जिसको जगत मिथ्या लगता है और रब सच्चा लगता है उसका बड़ा घाटा हो या बड़ा फायदा हो फिर भी वह उससे प्रभावित नहीं होता है।

मैं आपको मनुष्य की बड़ाई-छोटाई को मापने का एक मानदंड बताता हूँ। अगर आपको किसी मनुष्य का माप निकालना हो तो फुटपट्टी से मत निकालना, दूसरे पैमाने से भी मत निकालना। मैं देता हूँ एक सुझाव। आदमी बड़ा है कि छोटा यह पहचानना हो तो आप उसे जो अच्छी लगे ऐसी कोई वस्तु दें या ऐसी कोई बात करें और इससे वह कितना खुश होता है यह जाँच करें। फिर उसे बुरी लगे ऐसी कोई वस्तु दें या ऐसी कोई बात करें

और वह कितना दुःखी होता है यह जाँच करें। अच्छी वस्तु या अच्छी बात से जो ज्यादा सुखी होता है और नापसंद वस्तु या बात से ज्यादा दुःखी होता है, वह छोटा आदमी है। जो सुख के समय ज्यादा सुखी नहीं होता और दुःख के समय ज्यादा दुःखी नहीं होता, वह बड़ा आदमी है।

जो आदमी जरा-जरा बात में अशांत, उद्विग्न एवं क्रोधित हो जाता है वह जिंदगी में ज्यादा उन्नति नहीं कर पाता। जो आदमी सुख-दुःख के प्रसंगों में भी अशांत नहीं होता, उद्विग्न नहीं होता वह अपने जीवन में अवश्य महान् कार्य कर पाता है।

दक्ष ने कहा : ''ओ दुष्ट ! तुमने झूठमूठ में साधुओं का बाना पहन रखा है। हमारे भोले-भाले बालकों को भिक्षुओं का मार्ग दिखाकर तुमने हमारा बड़ा अपकार किया है। तुम्हारे हृदय में दया का नाम नहीं है। तुम तो हमारी वंशपरंपरा का उच्छेद करने पर ही उतारू हो।''

इस प्रकार के अनेक दुर्वचन कहते हुए अंत में श्राप दे दिया : ''मूढ़ ! जाओ, लोक-लोकान्तरों में भटकते रहो। कहीं भी तुम्हारे लिए ठहरने की जगह नहीं होगी।''

नारदजी ने सोचा : 'यह तो मानों वरदान मिल गया कि कहीं भी ज्यादा देर नहीं ठहरूँगा। घूमता-फिरूँगा तो और ज्यादा भक्ति-ज्ञान का प्रचार होगा, ज्यादा सत्संगी मिलेंगे, भगवान के रास्ते जानेवाले ज्यादा लोग मिलेंगे।'

नारदजी चाहते तो प्रत्युत्तर में श्राप दे सकते थे लेकिन उन्होंने 'बहुत अच्छा' कहकर दक्ष का श्राप स्वीकार कर लिया। कैसी अनूठी है नारदजी की सहनशक्ति कि जिन्होंने श्राप को भी वरदान के रूप में स्वीकार कर लिया।

संसार में बस, साधुता इसीका नाम है कि बदला लेने की शक्ति रहने पर भी दूसरे का किया हुआ अपकार सह लिया जाये।

एतावान् साधुवादो हि तितिक्षेतेश्वरः स्वयम्।

नारदजी ऐसे ही क्षमावान् महापुरुष थे।

(श्रीमद्भागवत : ६.५.४४)

सब दोषों का मूल : प्रज्ञापराध

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

प्रज्ञापराधो मूलं सर्वदोषाणाम्...

सभी दोषों का मूल है प्रज्ञा का अपराध। इस संसार में जितने भी दुःख हैं वे सब बेवकूफी के कारण ही उत्पन्न होते हैं। जहाँ बेवकूफी है वहाँ दुःख है। जहाँ समझ है वहाँ सुख है।

जहाँ सुमति तहँ संपति नाना।
जहाँ कुमति तहँ दुःख निधाना॥

जितने भी दुःख हैं वे सब बुद्धि की मंदता से आते हैं। बुद्धि की मंदता के कारण ही राग-द्वेष होता है। बुद्धि की मंदता के कारण ही लोग संपूर्ण जीवन 'मेरे-तेरे' में गँवाकर अंत में निराश होकर मर जाते हैं।

एक बहुत बड़े विद्वान् पण्डित थे। उनके नाम से सब पण्डित घबराते थे। कोई भी उनके साथ शास्त्रार्थ करने को तैयार नहीं होता था।

एक दिन जब सूर्य ढल गया और संध्या का समय हुआ तो वे पण्डित महाशय दही खाने लगे। उसी समय उनकी पहचानवाले एक दूसरे पण्डित मित्र वहाँ पहुँच गये। संध्या के समय उन्हें दही खाते देखकर पण्डित मित्र ने कहा :

''यह क्या कर रहे हो ?''

विद्वान् पण्डित : ''दही खा रहा हूँ।''

''संध्या के समय दही खा रहे हो ! क्या तुम्हारी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी है ?''

''मेरी बुद्धि इतनी तीक्ष्ण है कि लोग मुझसे बात करने में भी घबराते हैं। मेरे साथ शास्त्रार्थ करने के लिये कोई नहीं आता। अतः मैं अपनी बुद्धि की तीव्रता को कम करने के लिये दही खा रहा हूँ।''

उनकी बात सुनकर मित्र हँसने लगा और बोला : ''बुद्धि को कम करने के लिये दही खा रहे हो ? तुम्हें दही खाने की आवश्यकता नहीं है, तुम तो ऐसे ही मूर्ख हो। संध्या के समय संध्या करनी चाहिए, प्राणायाम-जप-ध्यानादि करना चाहिए यह तुम्हें मालूम है, फिर भी अपनी बुद्धि का दिवाला निकाल रहे हो। तुमसे बड़ा मूर्ख और कौन होगा ?''

यह है प्रज्ञा का अपराध। बुद्धि की कमी के कारण ही व्यक्ति सब करा-कराया चौपट कर देता है। मानव के पास बुद्धि तो है किन्तु वह उसका सही उपयोग नहीं करता इसी कारण आये दिन झगड़े-फ़साद होते रहते हैं। जरा-जरा-सी बात में हम इतने भड़क जाते हैं कि मार-पीट की नौबत आ जाती है।

जहाँ राग होता है वहाँ दूसरे की कोई गलती नहीं दिखती और जहाँ द्वेष होता है वहाँ दूसरे का सद्‌गुण नहीं दिखाई देता। दूसरों को समझकर कार्य नहीं करते तो उनकी अच्छाई भी हमें बुराई ही दिखती है। ये राग-द्वेष भी होते हैं प्रज्ञा की कमी से... प्रज्ञा के दोष के कारण ही हमें दूसरों की कंकड़ समान कमियाँ भी पहाड़ जैसी लगती हैं और अपनी पहाड़ जैसी कमियाँ भी कंकड़ जैसी लगती हैं। अपनी कमी का पता चलने पर भी उन्हें निकालने के लिए उतने सजाग या उतने दृढ़ प्रयत्नशील नहीं रहते और अपने इस मिथ्या शरीर की प्रशंसा एवं वाहवाही सुनकर खुश होते हैं और खोये रहते हैं।

अरे ! वाहवाही से तो कुत्ता भी खुश हो जाता है, पुचकारने पर पूँछ हिलाता है और डण्डा दिखाने पर पूँछ दबा लेता है। फिर आप खुश या नाराज हो गये तो क्या बड़ी बात है ?

प्रज्ञा के अपराध के कारण ही हम कुछ न जानते हुए भी अपने-आपको सर्वश्रेष्ठ समझने लगते हैं।

यह मूर्खता नहीं तो और क्या है ?

मनुष्य की प्रज्ञा का यह दोष दूर होता है बुद्धि का आदर करने से। बुद्धि का जितना आदर करोगे उतनी वह विकसित होगी। ...और बुद्धि की पराकाष्ठा है ब्रह्मज्ञान। बुद्धि के विकास के लिए आत्मज्ञान से बढ़कर कोई उपाय नहीं है।

यदि सब दुःखों से सदा के लिये छूटना है तो आत्मज्ञान पा लो।

कभी न छूटे पिण्ड दुःखों से,
जिसे ब्रह्म का ज्ञान नहीं।

जब तक ब्रह्म का ज्ञान नहीं होगा, तब तक दुःखों से पिण्ड नहीं छूट सकता। फिर चाहे आप स्वयं प्रधानमंत्री ही क्यों न बन जायें। सुविधाएँ तो मिल जायेंगी लेकिन सब दुःखों का अंत न हो सकेगा। समस्त दुःखों का अंत तो तभी होगा जब ब्रह्म का ज्ञान पाओगे, अपने आत्मस्वरूप को पहचानोगे।

रामकृष्ण परमहंस का एक शिष्य था जो कुछ बनना चाहता था। श्रीरामकृष्ण उसको बोलते थे :

''तू चाहे डॉक्टर बन, चाहे इंजीनियर बन, चाहे वकील बन लेकिन पहले अपने आपको जान ले। मूल को जान ले फिर चाहे किसी भी शाखा को पकड़ना। एक बार अपने आत्मदेव को पा ले फिर जो पाना चाहो पा लेना।''

ईश्वर को पाने के लिये संसार को छोड़ना पड़े तो छोड़ देना लेकिन संसार को पाने के लिये ईश्वर का त्याग कदापि न करना।

आज कल के माता-पिता भी बच्चों से डॉक्टर, इंजीनियर, वकील आदि बनने की आशा तो रखते हैं लेकिन कोई भी माता-पिता यह नहीं कहते कि 'बेटा ! तू एक बार ब्रह्मवेत्ता होकर दिखा दे।' जो माता-पिता ऐसा बोलें वे माता-पिता नहीं, वरन् उनके रूप में साक्षात् सद्‌गुरु ही हैं।

ऐसी महिमा है आत्मज्ञान की ! जिसने अपने आत्मस्वरूप को पाया है समझो, उसने सब कुछ पा लिया और जिसने अपने आत्मस्वरूप को नहीं पाया उसने कुछ नहीं पाया। आत्मज्ञान-प्राप्त महापुरुष की प्रज्ञा परमात्मा में प्रतिष्ठित हो जाती है... **तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता** । ...और जिसकी प्रज्ञा परमात्मा में प्रतिष्ठित हो चुकी है उसके सब दोष अपने-आप निवृत्त हो जाते हैं।

दुनिया में जो कुछ दुःख हैं, वे प्रज्ञा के दोष से हैं। बुद्धि की जितनी मन्दता, दुःख उतने ज्यादा। बुद्धि जितनी हीन, दुःख उतने ज्यादा। बुद्धि जितनी शुद्ध, दुःख उतने कम। बुद्धि अगर पूर्ण शुद्ध हो गई तो बड़ा अनुपम लाभ होगा।

बुद्धिगत ज्ञान का आदर करने से व्यर्थ का आकर्षण, व्यर्थ की चेष्टा, व्यर्थ के भोग और व्यर्थ का संग्रह, व्यर्थ का शोषण और व्यर्थ का पुचकार सारा का सारा खत्म होता चला जाएगा। विकल्प कम होने से आपका मन निःसंकल्प होगा। मन निःसंकल्प होने लगेगा तो सामर्थ्य बढ़ने लगेगा। मन को ज्यादा काम नहीं तो बुद्धि को ज्यादा परेशानी नहीं। बुद्धि जहाँसे स्फुरित होती है उस वास्तविक ज्ञान में बुद्धि ठहरने की अधिकारिणी हो जाएगी।

भगवान श्रीकृष्ण गीता में 'सांख्ययोग' नामक दूसरे अध्याय में कहते हैं :

यः सर्वत्रानभिस्नेहस्तत्तत्प्राप्य शुभाशुभम् ।
नाभिनन्दति न द्वेष्टि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५७॥

'जो पुरुष सर्वत्र स्नेहरहित हुआ उस-उस शुभ या अशुभ वस्तु को प्राप्त होकर न प्रसन्न होता है और न द्वेष करता है उसकी बुद्धि स्थिर है।' (५७)

यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥५८॥

'...और कछुवा सब ओर से अपने अंगों को जैसे समेट लेता है, वैसे ही जब यह पुरुष इन्द्रियों के विषयों से इन्द्रियों को सब प्रकार से हटा लेता है, तब उसकी बुद्धि स्थिर है।' (ऐसा समझना चाहिये।) (५८)

तानि सर्वाणि संयम्य युक्त आसीत मत्परः ।
वशे हि यस्येन्द्रियाणि तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६१॥

'इसलिये साधक को चाहिये कि वह उन सम्पूर्ण इन्द्रियों को वश में करके समाहितचित्त हुआ मेरे परायण होकर ध्यान में बैठे, क्योंकि जिस पुरुष की इन्द्रियाँ वश में होती हैं, उसीकी बुद्धि स्थिर हो जाती है।' (६१)

तस्माद्यस्य महाबाहो निगृहीतानि सर्वशः ।
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता ॥६८॥

'इसलिये हे महाबाहो ! जिस पुरुष की इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषयों से सब प्रकार निग्रह की हुई हैं, उसीकी बुद्धि स्थिर है।' (६८)

इन्द्रियगत ज्ञान अति तुच्छ है। जो लोग इन्द्रियगत ज्ञान को सर्वस्व मानते हैं उन लोगों के जीवन में बस, भोग... भोग... भोग...। पाश्चात्य जगत के लोग परलोक को नहीं मानते, श्राद्ध आदि को नहीं मानते। वे लोग इन्द्रियगत ज्ञान को ही सर्वस्व मानते हैं। इस शरीर को खूब खिलाओ-पिलाओ और भोग भोगो। इन्द्रियगत ज्ञान का आदर है इसलिए इन्द्रियों को खूब भोग चाहिए। इन्द्रियाँ चंचल हैं इसलिए भोग भी बदलते रहते हैं।

पाश्चात्य जगत की क्या परिस्थिति है ? बड़ी दयनीय स्थिति है उन लोगों की। वे लोग समय-समय पर फैशन बदलते हैं, कपड़े बदलते हैं, फर्नीचर बदलते हैं, घर बदलते हैं, कार बदलते हैं और यहाँ तक कि पत्नी भी बदलते हैं।

कहीं-कहीं तो ऐसी जगहें हैं जहाँ लोग अपनी-अपनी पत्नी ले जाते हैं। सब लोग नाचते हैं, झूमते हैं, दारू पीते हैं और पत्नियाँ बदलकर उपभोग करते हैं। फिर भी बेचारों को सुख नहीं है... दिनोंदिन अशान्ति के, बरबादी के रास्ते चले जा रहे हैं।

पत्नी बदलो, परिवार बदलो, घर बदलो, गाड़ी बदलो, कपड़े बदलो, यह बदलो, वह बदलो फिर भी शांति नहीं। जब अमेरिका में २५ करोड़ की जनसंख्या थी तब वहाँ २०-२५ हजार लोग हर साल आत्महत्या करते थे और अब २७ करोड़

३ लाख से भी अधिक की आबादी हो गई है तो फिर क्या हाल होगा ? हालाँकि वहाँ की आर्थिक स्थिति बड़ी अच्छी है, खाने-पीने की चीजें प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं, उनमें कोई मिलावट नहीं है, लोग खूब काम करते हैं... अपनी 'ड्यूटी' बजाते हैं लेकिन मशीन की तरह काम किये जा रहे हैं। भोग में अपनेको गिराये जा रहे हैं।

भारत का अभी भी सौभाग्य है कि हजारों की संख्या में आप लोग आत्मशांति की जगह पर बैठ सकते हो।

भारत के युवक जब विदेशों में जाते हैं तब वहाँ उनका 'ब्रेनवाश' अर्थात् बलात् मतपरिवर्तन या मतारोपण किया जाता है। वे युवक उनसे इतने प्रभावित हो जाते हैं कि जिस भूमि में वे पैदा हुए, जो ऋषियों की भूमि है, भगवान ने भी कई अवतार जिस भूमि पर लिये हैं, कई संत-महात्मा, ब्रह्मवेत्ता सत्पुरुष जिस भूमि पर अवतरित होते रहते हैं ऐसी अपनी मातृभूमि भारत के लिये उनमें घृणा और नफ़रत पैदा हो जाती है।

स्वामी रामतीर्थ के कथनानुसार और रशिया के कई विद्वानों के लेखों के अनुसार ईसा मसीह सत्रह साल भारत में रहे थे। उन्होंने कश्मीर के योगियों से योग सीखा। बाद में वहाँ जाकर चमके थे। ऐसी दिव्य भारत भूमि के लिए ही वे युवक बोलने लगते हैं : 'India is nothing. India is very poor. भारत कुछ नहीं है। भारत बहुत गरीब है।'

मैं अमेरिका गया था तो वहाँके लोगों ने पूछा :

''आप आध्यात्मिकता की बात करते हैं... तो भारत में आध्यात्मिकता है फिर भी भारत इतना गरीब क्यों है ?''

मैंने कहा : ''हमारा भारत गरीब क्यों है यह आपको बता दूँगा लेकिन पहले आप यह बताओ कि आपके पास सब कुछ भौतिक सुविधाएँ होने के बावजूद दिल की दरिद्रता क्यों नहीं मिटती? पति कमाता है, पत्नी कमाती है, बच्चे कमाते हैं फिर भी जैसे बूढ़े पशुओं को गौशाला में भेज देते हैं, ऐसे ही आप अपने माँ-बाप को 'नर्सिंग होम' (सरकारी अनाथाश्रम) में क्यों भेज देते हो ? दिल के इतने दरिद्र क्यों ?

अब मैं यह बताता हूँ कि भारत दरिद्र क्यों हुआ। वह जमाना था कि भारत के लोग सोने के बर्तनों में भोजन करते थे। युधिष्ठिर महाराज ने यज्ञ किया था तब प्रतिदिन एक लाख लोगों को भोजन कराते थे। दस हजार साधू-ब्राह्मणों को सुवर्णपात्रों में भोजन परोसा जाता था। उन्हें हाथ जोड़कर विनती करते थे कि : 'भोजनोपरान्त कृपया सुवर्णपात्र को स्वीकार करके अपने घर ले जाइये।' कुछ लोग ये बर्तन ले जाते और कुछ लोग ऐसे भी थे जो कहते : 'हम ये सोने के ठीकरे सँभालेंगे कि अपने आत्मधन का ख्याल करेंगे ?' सोने के बर्तन वहीं छोड़कर वे चले जाते थे। ऐसा हमारा भारत था !

हमारे भारत के एक साधू स्वामी रामतीर्थ अमेरिका पहुँचे तो वहाँ का राष्ट्रपति मि. रूज़वेल्ट उनका दर्शन करके बोलता है :

'आज मेरा जीवन धन्य हुआ। अब तक तो ईसा मसीह के बारे में केवल सुना था। आज जिन्दा ईसा मुझे इन साधू में दिखाई दे रहा है।'

भारत में ऐसे मोती पकते हैं। भारत आध्यात्मिक और भौतिक दोनों संपत्तियों से समृद्ध था। फेरीवाले पुकार लगाते थे : 'देना चाहो तो सोने-चाँदी के टूटे-फूटे बर्तन...'

जमाना बदला। विदेशी लुटेरों ने देश पर आक्रमण किया। भारतीयों में संकीर्णता और दुर्बलता घुस गई। 'सबमें भगवान हैं...' की भावना से सब विदेशियों को आत्मसात् कर लिया लेकिन लुटेरों ने भारत का सब माल हड़प कर लिया। फिर अफ़गानिस्तानवाले आये, हूण आये, शक आये, ग्रीक (यूनानी) आये, फिरंगी (अंग्रेज) आये। सदियों तक भारत पराधीन बना रहा। शोषकों ने भारत की आर्थिक स्थिति सब गड़बड़ कर दी। शोषक लोग बढ़ गये, कंस और रावणों का प्रभाव बढ़ गया। समाज का खून चूसनेवाले दुष्टों का बोलबाला होने लगा। लोगों में सावधानी

नहीं रही। उन्होंने अपनी बलवान् संकल्प-शक्ति खो दी। वे अपनी हिम्मत और प्राणशक्ति को भूलते गये। आध्यात्मिकता का, वेदान्त का, उपनिषदों का अमृतोपदेश गिरि-गुफाओं तक ही सीमित होने लगा। लोग हिम्मत, साहस, प्रसन्नता और सतर्कता भूलते गये। भय, लाचारी, खुशामदखोरी, पलायनवाद... 'अपना क्या ? करेगा सो भरेगा...' इस प्रकार की धारणा से समाज पिछड़ गया। इसका फायदा शोषकों ने लिया।

...और इस समय भारत में अमेरिका की अपेक्षा भूमि कम है, अमेरिका की अपेक्षा तीसरा हिस्सा भी नहीं है और जनसंख्या तीन गुनी से भी अधिक है। इस प्रकार देखा जाय तो अमेरिका में भारत की अपेक्षा करीब साढ़े नौ गुनी अधिक भौतिक सुविधाएँ हैं। फिर भी हमें रंज नहीं है।

आपके यहाँ भले ही इतनी सुविधाएँ हों लेकिन भारत आध्यात्मिक सपूतों के प्रसाद से प्रेम और सहनशक्ति, सहानुभूति और स्नेह, सद्भाव और सामाजिक जीवन में आपसे अभी भी कहीं ऊँचा है। भले ही सिनेमा और टी.वी. के माध्यम से पाश्चात्य जगत की गन्दगी भारत में आ रही है फिर भी आध्यात्मिक सुवास, हृदय की शान्ति कोई लेना चाहे तो, मिलेगी तो भारत से ही मिलेगी, आपके यहाँ मिलना मुश्किल है।''

हे भारतवासियों ! आत्मशांति, आत्म-निर्भरता, आत्मसंयम और सदाचार बढ़ाकर अपना आत्म-साक्षात्कार... अपना जन्मसिद्ध अधिकार पा लो। कब तक विलासियों का अनुकरण करते-करते अपनेको अशांति और उद्वेग में खपाते रहोगे ?

उठो... जागो... कमर कसो। सनातन धर्म के सर्वोपरि सिद्धान्तों को अमल में लाओ और यहीं, इसी जन्म में आत्मा-परमात्मा का अनुभव, अपनी अमरता का अनुभव कर लो।

हे परमेश्वर के अति निकटवर्ती मानव ! बहकावे में आकर विलासिता में फिसलने से अपनेको बचा।

मानव ! तुझे नहीं याद क्या ? तू ब्रह्म का ही अंश है।
कुल गोत्र तेरा ब्रह्म है, तू ब्रह्म का ही वंश है॥

हे स्थितप्रज्ञ ! हे ऋषियों की संतान ! अपनी प्रज्ञा को ऊँची उठाओ... ब्रह्म में स्थिर करो। यही तुम्हारा वास्तव में मुख्य कर्त्तव्य है। फिर पूरा संसार तुम्हें खिलौना लगेगा।

ॐ... ॐ... ॐ... जागो... जागो...

ऐसे पुरुषों को खोज लो जो तुम्हारी प्रज्ञा को परमात्मा में प्रतिष्ठित कराने की क्षमता रखते हों।

उत्तिष्ठत... जाग्रत... प्राप्य वरान्निबोधत।

*

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

सच्चा सम्राट

ज्योतिष विद्या का एक प्रकांड पण्डित एवं छायाशास्त्री कहीं से गुजरा और यह देखकर दंग रह गया कि : 'ये पदचिह्न ! किसी चक्रवर्ती सम्राट के पदचिह्न !' सामुद्रिक लक्षण जाननेवाले उस ज्योतिषी ने सोचा : 'एक चक्रवर्ती सम्राट ! इस रास्ते से ! ...और नंगे पैर गया ! सम्राट यदि जाये तो सवारी पर जाये एवं साथ में सेना हो किन्तु यह पदचिह्न तो एक ही व्यक्ति के हैं ! क्या मेरा ज्योतिष मुझे धोखा दे रहा है ? क्या मेरी बुद्धि मारी गयी है ? नहीं नहीं... यह नहीं हो सकता।' उस ज्योतिषी ने उन पदचिह्नों का अनुसरण किया। अंत में उसने देखा कि एक भिक्षुक ध्यान में बैठा है और वहीं जाकर पदचिह्न समाप्त हुए हैं।

उस ज्योतिषी ने थोड़ी देर इन्तजार किया। भिक्षुक जब ध्यान से उठा तब ज्योतिषी ने कहा :

''लगता है आज मेरा ज्योतिष झूठा पड़ गया। ये पदचिह्न तो जहाँ आप बैठे हैं वहीं समाप्त हो रहे हैं । पदचिह्न तो किसी सम्राट के हैं और आप एक भिक्षुक !''

वे भिक्षुक और कोई नहीं, महावीर स्वयं थे। ज्योतिषी की बात सुनकर वे बोले :

''राजा की क्या पहचान है ?''

ज्योतिषी : ''राजा अकेला नहीं होता है लेकिन आप अकेले हैं।''

महावीर : ''नहीं... निर्विकल्प ध्यानरूपी पिता मेरे साथ हैं, अहिंसारूपी मेरी माता मेरे साथ है, ब्रह्मचर्यरूपी भाई मेरे साथ है और अनासक्तिरूपी बहन मेरे साथ है, शांतिरूपी प्रिया मेरे साथ है, विवेकरूपी पुत्र मेरे साथ है और क्षमारूपी पुत्री मेरे साथ है। उपशमरूपी घर और सामान मेरे साथ हैं। सत्यरूपी मित्र मेरे साथ है, फिर मैं अकेला कैसे ?''

ज्योतिषी : ''अब मुझे समझ में आया कि सामुद्रिक लक्षण केवल बाह्य चीजों पर ही आधारित नहीं होते । मनुष्य में बहुत सारी संभावनाएँ छुपी हुई हैं। वह अगर उसका सदुपयोग करता है तो सच्चा सम्राट बन जाता है।

राजा की सेना तो सीमित होती है लेकिन आपकी शुभ तरंगें राजा की सेना से भी ज्यादा दूर तक फैली रहती हैं । आपकी शुभ तरंगरूपी सेना ही चारों ओर सुरक्षा कर देती है । जहाँ आपकी निगाहें पहुँचती हैं वहाँ आपकी शुभ सेना लोगों की रक्षा कर लेती है। आपका धर्मचक्र एवं विचाररूपी वायु चारों तरफ आनंद, शांति एवं माधुर्य फैलाता रहता है।

स्वामी ! आपका राज्य ही वास्तविक राज्य है। आज मेरा ज्योतिष सचमुच में सार्थक हो गया कि मुझे आप जैसे सच्चे सम्राट के दीदार हो गये एवं आपके राज्य का ज्ञानश्रवण करने के लिए अवसर मिला। आपके श्रीचरणों में मेरा बारंबार प्रणाम है !''

*

'गिरा दो...'

शास्त्रों में आता है कि भली प्रकार से तत्त्ववेत्ताओं की सेवा करनी चाहिए, उनके चित्त की प्रसन्नता प्राप्त करनी चाहिए। और कुछ नहीं ले जा सकते फिर भी गुरु के पास खाली हाथ मत जाओ, कम-से-कम खड़ाऊँ ले जाओ। वह भी नहीं है तो पानी का मटका भरकर ले जाओ। वह

भी नहीं है तो दो फूल ले जाओ, लेकिन खाली हाथ मत जाओ क्योंकि भरे दिल को छलकाने के लिए उनके आगे तुम्हें भी कुछ-न-कुछ निमित्त उपस्थित करना चाहिए।

बुद्ध के पास एक रानी जाया करती थी। वह मनौतियाँ मानती रहती थी कि ऐसा दिन आये कि 'मेरे पतिदेव भी इन महापुरुष के आत्मरस को पाने के रास्ते चलें। शराब पीकर, मांस खाकर, अहंकार को पोसकर वे तबाही के रास्ते जा रहे हैं।' वह कई बार अपने पति को उन महापुरुष के पास जाने के लिए कहती थी तो उसका पति हँसी उड़ाकर कहता : 'तू ही जाया कर भक्ताणी!' ...लेकिन शुद्ध इरादे पर जो डटा रहता है तो देर-सवेर उसका प्रभाव भी पड़ता ही है।

एक दिन उसके पति के मन में आया : 'रोज बोलती है 'चलो, भंते के पास चलो...' तो अब वह जाये उसके पहले मैं जा के आता हूँ।'

पत्नी का संकल्प फला। वह बड़ी खुश हुई और बोली :

''आप जा रहे हैं तो ऐसे बुद्ध पुरुष के पास खाली हाथ जायेंगे क्या ?''

राजा : ''नहीं, मैंने एक हीरा उठाया है। सच्चा हीरा है, लाख रुपयों का है।''

पत्नी : ''इन कंकड़ों से वे प्रसन्न होनेवाले नहीं हैं। खैर, ले जाइए लेकिन यह फूल खिला है इसे भी ले जाइये।''

उनके हृदय का जो प्रसाद खिला है उसका प्रतीक है फूल। जैसे फूल सुवास देता है वैसे महापुरुष अपने अनुभव की सुवास से हमें संपन्न करें इसलिए उन्हें पुष्प अर्पण किया जाता है।

भगवान का एवं भगवान को पाये हुए महापुरुषों का अनुभव एक ही होता है। भगवान के मंदिर में भी हम पत्र-पुष्प ले जाते हैं। जब सारी सृष्टि भगवान की है तो क्या दो फूल भगवान को मालदार बना देंगे या सुखी बना देंगे ? गुरु को बड़ा सुख दे देंगे ? नहीं। फिर भी यह भेंट प्रसन्नता का द्योतक है। साधक की अवस्था में देते-देते सिद्ध हो जाते हैं तो सिद्धावस्था में भी उनकी देने की आदत बनी रहती है। वशिष्ठजी महाराज कहते हैं : ''हे रामजी ! उसके देने की आदत बन जाती है फिर वह किसीसे साग भी नहीं माँगता और देने को अपना सब कुछ देकर, सब कुछ जिसका है उसमें टिक जाता है वह योगी।''

खैर, इतनी ऊँचाई तो उस राजसी आदमी की होना संभव नहीं है, लेकिन पत्नी ने फूल दिया तो हीरा व फूल लेकर वह चला। बुद्ध के पास पहुँचा। बुद्ध को फूल देने से पहले विचार आया कि फूल तो हल्की चीज है, सस्ता है। अतः पहले हीरा दिखा दूँ महाराज को। वह हीरा निकालकर बोला : ''लो।''

अब संतों को कोई हाथों-हाथ चीज दे तो, या तो उसमें अक्ल नहीं है या तो वह अहंकारी है। अरे ! उनके चरणों में रखना है तो रख, नहीं तो उठाकर ले जा।

वह राजा बोला : ''लो महाराज ! यह हीरा !''

बुद्ध ने कहा : ''गिरा दो।''

राजा : ''लो महाराज ! कभी काम आयेगा।''

बुद्ध : ''गिरा दो।''

राजा ने हीरा गिरा दिया। फिर फूल दिया।

बुद्ध ने कहा : ''गिरा दो।''

राजा को हुआ कि महाराज बड़े त्यागी हैं ! उसने हाथ जोड़ लिये।

बुद्ध : ''गिरा दो।''

उसका सिर थोड़ा झुका।

बुद्ध : ''थोड़ा-थोड़ा क्या गिराते हो ? पूरा अपनेको गिरा दो।''

राजा पूरा लेट गया। उसने दण्डवत् प्रणाम कर लिये। बुद्ध की अमीदृष्टि पड़ी। उसे बड़ी शांति का एहसास होने लगा। इतने में तो उसकी पत्नी आ गयी। वह देखकर दंग रह गयी कि : 'यह क्या ! ये किसीके आगे झुकनेवाले नहीं हैं, किसी साधु-संत के पास जानेवाले नहीं हैं और आज... कुछ

लेकर भी आये और चरणों में गिरे हैं !' वह बड़ी खुश हुई। कंधा पकड़कर पति को उठाया : ''उठो... उठो...'' वह बोला : ''अरे, कहाँ आ धमकी ? जरा लेटे रहने देती, बड़ी शांति मिल रही थी।''

जो संत-महापुरुषों के श्रीचरणों में अपना अहंकार गिरा देता है, वह बड़ी शांति एवं प्रसन्नता का अनुभव करता है।

*

'दुबारा कभी न आना...'

एक बार शाहजहाँ ने पुराना चित्र देखा तो बोला : ''ओ हो हो... मेरे दादाजान ! अकबर बादशाह ! भारत के फकीर के चरणों में लंबे पड़े हैं !! हम मुसलमान और हिन्दू संत के चरणों में अकबर बादशाह !!!' उसने वृद्ध मंत्री से पूछा :

''हमारे महल में यह चित्र ! इसे कोई हिन्दू तो लगवा नहीं सकता। हम लोगों के कुल-खानदान में ऐसा चित्र हमारे दादाजान के सिवाय कोई लगवा नहीं सकता, तो यह चित्र यहाँ कैसे ?''

मंत्री ने बताया :

''अकबर सच्चे संत-महापुरुषों के चरणों में जाते थे और इसी कारण वे प्रजा के प्रिय भी बने। ये संत हरिदासजी हैं, बड़े उच्च कमाई के धनी थे और तानसेन के गुरु थे। तानसेन के गायन से अकबर को आनंद तो आता था लेकिन एक बार वे तानसेन के गुरु के दर्शन करने गये। तानसेन का गाया हुआ गीत ही जब हरिदासजी ने गाया तो अकबर दंग रह गये ! उन्होंने तानसेन से पूछा कि तुम्हारे गुरुजी ने वही भजन गाया जो तुम गाते हो लेकिन तुम्हारे गाने से मनोरंजन मिलता है जबकि तुम्हारे गुरु ने गाया तो मन को शांति मिली, मन कुछ रूहानियत में खो गया। क्या बात है ? तब तानसेन ने कहा कि जहाँपनाह ! मैं आपके लिये गाता हूँ, एक बंदे के लिये गाता हूँ लेकिन मेरे गुरु हरिदासजी महाराज परमेश्वर के लिए गाते हैं, परमेश्वर में गोता मारकर गाते हैं इसलिए उनका गीत शांतिदायक बन जाता है, रूहानियत की खबरें देता है।''

शाहजहाँ ने इस चित्र का आदर किया और मंत्रियों से कहा : ''अभी हरिदास महाराज की गद्दी पर कौन है, इसका पता लगाओ।''

जाँच करवाने पर पता चला कि वृंदावन में इस समय हरिदासजी की गुरुगद्दी पर मोहिनीशरणदेवजी हैं।

शाहजहाँ को हुआ : 'मेरे दादा हरिदासजी के पास गये। उन्हींका पौत्र मैं शाहजहाँ अब हरिदासजी के पौत्र की शरण में जाऊँ।'

शाहजहाँ राजसी व्यक्ति था। गुरु के द्वार पर पद-प्रतिष्ठा आदि नश्वर चीजें भूलकर शाश्वत् की प्रीति के लिए अंतःकरण खुला रखकर जाना पड़ता है। शाहजहाँ पहली बार गया संतचरण में। मोहिनीशरणदेवजी के पास जाकर उसने अपना परिचय दिया : ''मैं अकबर का पौत्र और आप हरिदासजी के पौत्र हैं। हमारे दादाजी आपके दादागुरुजी के चरणों में प्रणाम करते हुए लेटे थे और मैं भी आपके चरणों में प्रणाम करता हूँ। मुझे भी कोई उपदेश दीजिए। मेरे लायक कोई काम हो तो बताइये एवं आप जो चाहते हों वह एक बार में ही मुझसे ले सकते हैं फिर आपको दुबारा किसीसे कुछ माँगना नहीं पड़ेगा।''

उस बंदे को पता ही नहीं था कि सद्गुरु कुछ लेने के लिए नहीं होते हैं, सद्गुरु देने के लिए होते हैं। कभी-कभार कुछ लेते हैं तो घुमा-फिराकर उसका अनंतगुना तुम्हारे चित्त में पहुँचाने के लिए लेते हैं। शाहजहाँ सद्गुरु की महिमा नहीं जानता था।

वृंदावन के मोहिनीशरणदेवजी भी ऊँची कमाई के धनी रहे होंगे। उन्होंने कहा :

''मुझे और तो कुछ नहीं चाहिए, केवल एक चीज चाहिए।''

शाहजहाँ : ''महाराज ! माँग लीजिए।''

गुरु माँगें और शिष्य माँग पूरी न करे ! अपने

अहं से सजा-धजा राजसी पुरुष शाहजहाँ बादशाहियत की अदा से कहता है :

''महाराज ! माँग लीजिये। संकोच न करिये। मेरे यहाँ किसी चीज की कमी नहीं है, आप निःसंकोच माँग लीजिये।''

मोहिनीशरणदेवजी : ''माँग लूँ ? मुझे जरूर दोगे ?''

शाहजहाँ : ''हाँ हाँ, दे दूँगा। माँग लीजिये महाराज !''

मोहिनीशरणदेवजी : ''दुबारा कभी इधर न आना। मुझे अपने शांत स्वभाव में रहने देना, इतना ही माँगता हूँ।''

कैसे हैं वे महापुरुष जिन्होंने एकांत की महिमा जानी है, जिन्होंने मौन की महिमा जानी है, जिन्होंने वासना को मिटाकर प्रीति पाई है और प्रीति का फल जिज्ञासा जगाई है और जिज्ञासा पूर्ण करके पूर्ण गुरु के ज्ञान में पहुँचे हैं !

ऐसे पुरुष को राजा, राजा का बाप क्या दे सकता है ? ऐसे महापुरुष अपने पास कुछ न होते हुए भी आँख की पलक में कंगाल को राजसिंहासन पर बैठाने के शुभ संकल्प का सामर्थ्य रखते हैं। उन्हें भूख लगे तो भिक्षा माँग लेते हैं जबकि राज्य तक का दान कर सकते हैं। इन्द्र के आगे वे शाहंशाह हैं जबकि भिखमंगे के मित्र बनकर रह सकते हैं। **आश्चर्यो त्रिभुवनजयी...** त्रिभुवन के ऐश्वर्य और आकर्षण पर पैर रखकर जिसने जिज्ञासा जगा ली, प्रभुप्रीति पा ली, ऐसे महापुरुषों का आदर अर्थात् ज्ञान का आदर और ऐसे महापुरुषों का सान्निध्य अर्थात् सत्यस्वरूप प्रभु का सान्निध्य।

> *महात्मा वे हैं जिनकी विशाल सहानुभूति एवं जिनका मातृवत् हृदय सब पापियों को, दीन-दुःखियों को प्रेम से अपनी गोद में स्थान देता है।*
>
> *('जीवन रसायन' में से)*

सिनेमा-टी.वी. से सावधान !

बालकों को संबोधित करते हुए किसी कवि ने कहा है :

तुम अग्नि की भीषण लपट।
जलते हुए अंगार हो॥
तुम चंचला की द्युति चपल।
तीखी प्रखर असिधार हो॥
तुम खौलती जलनिधि-लहर।
गतिमय पवन उनचास हो॥
तुम राष्ट्र के इतिहास हो...
तुम क्रांति की आख्यायिका।
भैरव प्रलय के गान हो॥
तुम इन्द्र के दुर्दम्य पवि।
तुम चिर अमर बलिदान हो॥
तुम कालिका के कोप हो।
पशुपति रुद्र के भ्रूलास हो॥
तुम राष्ट्र के इतिहास हो...

...किन्तु आज का बालक ? क्या दुर्दशा हो गयी है उसकी ! पश्चिमी सभ्यता का पुजारी बना आज का बालक २०-३० बरस की उम्र में ही बूढ़ा नजर आने लगता है। ओजस्वी, तेजस्वी मुखमंडल, कसे हुए भुजदण्ड एवं सुगठित शरीर के स्थान पर पिचके हुए गाल, अंदर धँसी हुई आँखें एवं ढीला-ढाला शरीर दिखता है। इसका कारण क्या है, जानते हो ? अश्लीलता एवं हिंसा का प्रचार करनेवाले सिनेमा और टी.वी., जिन्हें देखकर

आज के बालक का ओज-तेज (जिससे ओज-तेज बनता है वह वीर्य) युवावस्था से पूर्व ही नष्ट हो चुका होता है।

सिनेमा से लोगों ने चोरी की नयी-नयी कलाएँ सीखीं, डाके डालने सीखे, शराब पीना सीखा, निर्लज्जता सीखी और व्यभिचार सीखा। सिनेमा के कारण हमारे युवक-युवतियों में हर प्रकार की स्वच्छंदता बढ़ रही है। इसके कई सच्चे उदाहरण तो हमारे सामने ही हैं। पता नहीं, लाखों-करोड़ों की संख्या में तरुण-तरुणियों पर इसका कैसा जहरीला असर हुआ होगा ! फिर भी हम इसे 'मनोरंजन का साधन' ही मानते हैं। कितनी नासमझी है !

आखिर यह कुरुचिपूर्ण फैशनपरस्ती हमारे तरुण-तरुणियों को किधर ले जायेगी ? टी.वी. एवं चलचित्रों के द्वारा पनपती बुराइयों का विरोध अत्यंत आवश्यक है। हे भारतवासियों ! अपने नौजवानों को बचाने का प्रयास करो।

जिस किसी घर में घुसो तो वहाँ टी.वी. चल रहा होता है। पूछो कि : 'क्या कर रहे हो ?' ...तो जवाब मिलता है कि : 'दिन भर काम से थक जाते हैं इसलिए कुछ तो मनोरंजन के लिए चाहिए न ?' छोटे-छोटे बच्चे, उनके माता-पिता और दादा-दादी... तीन-तीन पीढ़ियाँ एक साथ बैठी हैं और देख क्या रही हैं ? ऐसे अश्लील दृश्य व गाने जो हम अपनी माताओं और बहनों के सामने गा नहीं सकते, सुन नहीं सकते। ऐसे दृश्य और गीत अपने बच्चों को क्यों दिखाये और सुनाये जाते हैं ?

वास्तव में इस देश के युवकों को गाना चाहिए : **'हम भारत देश के वासी हैं... हम ऋषियों की संतानें हैं... हम परब्रह्म का परिवार हैं... अमृतमय ईश्वर की संतानें हैं... हम सद्गुरु के बालक हैं... हम परम प्रभु के बच्चे हैं...'** लेकिन इसकी जगह गा रहे हैं अश्लील गाने। यह संस्कृति का विनाश नहीं तो और क्या है ?

यह मनोरंजन नहीं है बल्कि घर-घर में सुलगती हुई वह आग है जो पूरी भड़केगी तो आपसे देखा नहीं जाएगा कि आपके बच्चे क्या कर रहे हैं।

टेलिविजन में जो फिल्में दिखाई जाती हैं वे अक्सर दो ही चीजें दिखाती हैं। एक तो अश्लीलता और दूसरी हिंसा। दोनों ही चीजें इतनी मात्रा में दिखाई जाती हैं कि आदमी के दिल-दिमाग पर ये चित्र छप जाते हैं।

क्या आप जानते हैं कि नौनिहाल बालक जिनको आप तो डॉक्टर, इंजीनियर, शिक्षक बनाने का सपना देखते हैं लेकिन आप इन्हें खुद क्या दिखा रहे हैं ?

बच्चों का आपस में खेलने से जो घुल-मिल जाने का, प्रेमभाव का वातावरण उनके मस्तिष्क में बनना चाहिए वह न बनकर अब उसकी जगह अश्लीलता व हिंसा ने ले ली है।

बच्चों की ही बात नहीं, बड़ों को भी देखिये कि एक बार टी.वी. खोलकर बैठ गये और उन्हें लग भी रहा है कि यह दृश्य नहीं देखना चाहिए, फिर भी उसे बंद करने का दृढ़ विवेक नहीं होता। हम इतने गुलाम हो गये हैं, कमजोर हो गये हैं, भ्रष्ट हो गये हैं। आपके बच्चे उन दृश्यों को कई-कई घंटे देखते रहते हैं।

कुछ निकाले गये आँकड़ों के अनुसार ३ साल का एक बच्चा जब टी.वी. देखना शुरू करता है और उसके घर में यदि केबल कनेक्शन पर १२-१३ चैनल उपलब्ध हैं तो प्रतिदिन ५ घंटे के हिसाब से वह बच्चा २० साल की उम्र में जब पहुँचता है तो अपनी आँखों के सामने ३३ हजार हत्याएँ और ७२ हजार बार अश्लीलता व बलात्कार के दृश्य देख चुका होता है।

यहाँ एक बात गम्भीरता से सोचने की है कि मोहनदास करमचन्द गाँधी नाम का एक छोटा-सा बच्चा एक या दो बार हरिश्चन्द्र का नाटक देखने के बाद सत्यवादी हो गया, देश को गुलामी की जंजीरों से छुड़वाया, देश की सेवा की, मानवता की सेवा, सच्चाई व सज्जनता की सुवास फैलाई। सभी में एक राम को निहारनेवाले अंत में भी राम राम करते राम में समाये। हरिश्चन्द्र नाटक की

जगह यदि उस बालक को चेनलें देखने को मिलतीं तो हमारा देश कहाँ होता ? हम कहाँ होते ?

हरिश्चन्द्र का नाटक जब दिमाग पर इतना असर करता है कि वह व्यक्ति को जिन्दगी भर सत्य और अहिंसा का पालन करनेवाला बना देता है तो जो बच्चे हत्याएँ, बलात्कार, बिनजरूरी विज्ञापन देखकर व्यर्थ, खर्चीला, निस्तेज जीवनवाले बन जाते हैं वे बालक क्या देंगे ? क्या आपकी सेवा व अपने स्वास्थ्य की सुरक्षा करेंगे ?

आप भले बड़ी उम्मीदें करें कि आपका बच्चा बड़ा इंजीनियर बनेगा, वैज्ञानिक बनेगा, योग्य सज्जन बनेगा, महापुरुष बनेगा, लेकिन बलात्कार और हत्याएँ देखनेवाला क्या खाक बनेगा ?

आप जरा अपने आपसे तो पूछिये कि हमारी बहन-बेटियों को सड़क चलते छेड़नेवाले ये लोग कहाँ पैदा हो रहे हैं ? उनमें बुराई कैसे फैलती है ? कौन हैं ये लोग ? इतनी हैवानियत और राक्षसी वृत्तिवाले व्यक्ति जो ५ और १० साल की बच्चियों को भी नहीं छोड़ते और उन्हें अपनी अंधी हवस का शिकार बना लेते हैं, ऐसे लोग कहाँ से आते हैं ? इनको ये संस्कार कहाँ से मिलते हैं ? सिनेमा और टी.वी. से। इनको ये सब कौन सिखाता है ? क्या किसी स्कूल में पढ़ाया जाता है या कहीं ऐसी ट्रेनिंग दी जाती है ? हिन्दुस्तान की कौन-सी स्कूल और कौन-सी किताब में यह सब पढ़ाया जाता है ?

जब यह बुराई किसी स्कूल में नहीं पढ़ाई जाती, घर में भी नहीं सिखाई जाती, उसके बावजूद भी ये बुरे लोग कहाँ से आ जाते हैं ?

उसके दो ही कारण हैं : या तो टी.वी. या फिर सिनेमा। इस हिंसा का असर इतना खतरनाक होता है कि जितनी बार आपका बच्चा मारामारी और हिंसक दृश्य देखता है उतनी बार उसके हृदय में दयाभाव, करुणाभाव, प्रेमभाव, सहिष्णुता, सज्जनता, सच्चरित्रता आदि सभी श्रेष्ठ गुण, मानवता के दिव्य गुण क्षीण होते जाते हैं।

हमारे शास्त्रों में कहा गया है कि :

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये, जब लग हिय में प्राण ॥

जब हमारे हृदय से दया ही खत्म हो जाएगी तो फिर धर्म कहाँ से बचेगा ? यह हिंसा हमें जानबूझकर दिखाई जा रही है। ऐसा नहीं है कि अच्छे कार्यक्रम दिखानेवाले लोग नहीं हैं। अच्छे कार्यक्रम बनाने और दिखानेवाले सज्जन लोग भी समाज में हैं लेकिन कुछ कारणवश वे इस क्षेत्र में आगे नहीं आ पाते और दुष्ट व स्वार्थी लोग जानबूझकर 'सेक्स' और मारामारीवाले दृश्य बनाते और दिखाते हैं।

आपका धर्म कहता है : **'वसुधैव कुटुम्बकम्'** और टी.वी. कहता है कि **'घर की बढ़े शान, पड़ोसी की जले जान।'**

सभी देशवासी मिलकर कदम उठायें, कन्धे से कन्धा मिलाकर उन हिंसक, भ्रष्ट, दयाभाव से रहित, दुर्गुणअभिवर्धक चैनलों का कड़ा विरोध करें। हमें चाहिए सामाजिक, नैतिक एवं मानसिक रूप से उन्नत करनेवाले सुसंस्कृत कथा-चित्र, जिससे हमारी संस्कृति सुरक्षित रह सके।

हमारे जीवन का उत्थान करने हेतु उच्च गुणसम्पन्न कार्यक्रमों को चलाने की माँग की जाए जिससे बालकों, युवाओं में दुर्गुण न पनपकर स्नेह, सदाचार, सहनशीलता, करुणाभाव, आत्मीयता, सेवा, साधना, सच्चाई, ईश्वरभक्ति, माता-पिता व गुरुजनों के प्रति आदरभाव जैसे महान् गुण पनपें। हमें इसके लिए जागृत होकर निर्भयता से बुराई को हटाने का पुरुषार्थ करना चाहिए। हम अपने भाग्य के विधाता स्वयं हैं।

हम आज से ही वंशनाशिनी, कुलकलंकिनी चैनल से अपने परिवार की रक्षा करें। समाज के विध्वंसक भी हम हैं और सर्जक भी हम ही हैं। बुरे संस्कारों के विरोध में खत लिखें व लिखवाएँ और अच्छे संस्कारों के समर्थन में खत लिखें व लिखवाएँ। इतनी सेवा तो आप कर ही सकते हैं, करवा भी सकते हैं। देश के लिए, मानवता के लिए बहुत बड़ी सेवा हो जायेगी आपकी। *[संपादक]*

जीवन्मुक्त के लक्षण

❊ संत श्री आसारामजी बापू के सतसंग-प्रवचन से ❊

जीते-जी जिन्हें अपने वास्तविक स्वरूप का निश्चय हो गया है, जिन्होंने अपने साक्षीस्वरूप का अनुभव कर लिया है एवं 'इस ब्रह्माण्ड तथा अनंत ब्रह्माण्डों में मेरे सिवा दूसरा कोई तत्त्व नहीं है...' ऐसा जिन्हें बोध हो गया है, वे जीवन्मुक्त हैं। ऐसे महापुरुष समस्त व्यवहार करते हुए भी व्यवहार या कर्म से नहीं बँधते क्योंकि वे देहभाव या मनभाव से कुछ नहीं करते।

वे अहंकार को, जो कि सब दुःखों का मूल कारण है, देह से लेकर अंतःकरण में कहीं भी नहीं रखते। वे सुख-दुःख, राग-द्वेष आदि द्वन्द्वों से परे होते हैं। वे सुख-दुःख को सच्चा नहीं मानते। जब वे अनुभव करते हैं कि 'मेरा जन्म ही नहीं' तो मृत्यु को वे सत्य कैसे मान सकते हैं ?

जब तक अंतःकरण है तब तक साक्षीभाव का कथन किया जा सकता है किन्तु जहाँ अंतःकरण के भी अभाव का अनुभव होता हो तब साक्षी भी कैसे कह सकते हैं ? साक्षीभाव की संज्ञा भी मुमुक्षु को समझाने के लिये है।

भगवान श्रीकृष्ण गीता में अलग-अलग प्रसंगों पर देह, मन, आत्मा को स्वयं के रूप में कहते हैं किन्तु श्रीकृष्ण परमात्मा का वास्तविक स्वरूप तो आत्मा है, साक्षी है। भक्त प्रथम देहभाव से श्रीकृष्ण परमात्मा की उपासना करता है, फिर धीरे-धीरे आत्मभाव से उपासना करता है और अंत में 'वह आत्मा अन्य कोई नहीं वरन् स्वयं ही हूँ...' ऐसे अभेद भाव से उपासना करता है। अंत में वह भेद-अभेद को भी मिटा देता है। 'मुझमें कोई भाव ही नहीं है, मुझमें द्वैतपना भी नहीं है और एकपना भी नहीं है...' यह परम अवस्था है। इस स्थिति को 'जीवन्मुक्ति की स्थिति' अथवा 'ब्राह्मी स्थिति' कहते हैं।

जब सभी मनुष्य तुमको अच्छा कहने लगें तब समझना कि मुसीबत आ खड़ी हुई है। बनावटी संतों की इसी प्रकार प्रशंसा उनके ही अनुयायियों ने की थी। सभी हमें अच्छा बोलें ऐसी इच्छा न करें क्योंकि अपना वास्तविक स्वरूप जो कि मन-वाणी से परे है उसकी प्रशंसा कोई नहीं करता अपितु शरीर, मन आदि की ही लोग प्रशंसा करते हैं और ऐसी प्रशंसा हमें नीचे ले जाती है।

अध्यात्म-पथ पर चलनेवालों के लिये ऐसी प्रशंसा, लोगों की बातचीत एवं अनेक प्रकार की सिद्धियों के पीछे पड़ना यह सब विघ्नरूप है, उनकी उन्नति को रोकनेवाला है क्योंकि जहाँ आत्मा के सिवाय कुछ नहीं है, जहाँ शरीर को भी भूलने की बात है वहाँ यह सब अवनति की ओर ले जानेवाला है। अतः जीवन्मुक्त महापुरुष उस ओर दृष्टिपात ही नहीं करते। जीवन्मुक्त अवस्था में इस जगत को देखने पर भी, शरीर को देखने पर भी पूरा साक्षीभाव बना रहता है।

जीवन्मुक्त की पहचान इस प्रकार होती है : उनका मन मानों ब्रह्म का ध्यान करता है, वचन मानों स्तुति करते हैं, चरण मानों ब्रह्म की प्रदक्षिणा करते हैं ऐसा लगता है। षड्रिपु उनके षड्मित्र बनकर रहते हैं। क्रोध क्षमा का रूप लेता है। अभिमान सम्मान का रूप लेता है। कपट सरलता का रूप लेता है। लोभ संतोष का रूप लेता है। मोह प्रेम का रूप लेता है। काम पूर्णकाम अर्थात् वासनारहित हो जाता है।

कई तत्त्वज्ञ महापुरुष कहते हैं कि मन एवं वाणी आत्मा तक नहीं पहुँच सकते। यह सच है लेकिन मनरूपी महासागर में उठते विचाररूपी तरंगों को आत्मा जानती एवं देखती है। इसी प्रकार वाणी एवं वाणी से उत्पन्न वचनरूपी तरंगों की भी आत्मा साक्षी है।

जैसे मनुष्यादि शरीर का जीवन अन्न है, वैसे ही मनुष्य का मनुष्यत्व उसके सदाचार में निहित है। इसी प्रकार जीव का जीवन तत्त्वज्ञान है, वही उसका आहार है। परन्तु आत्मा का जीवन तो ब्रह्म का साक्षात्कार है।

अनमोल वचन

[बुद्ध पूर्णिमा दिनांक : १८ मई २०००]

बौद्ध धर्म की सर्वाधिक लोकप्रिय अमरकृति 'धम्मपद' है। इसके रचयिता कौन हैं, इस विषय में प्रामाणिक रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता किन्तु इस रचना में समाहित उपदेश और वचन भगवान बुद्ध के हैं। बुद्ध पूर्णिमा के पावन अवसर पर उन्हीं में से कुछ अमृतवचनों का रसपान करें :

❋ उठने के समय जो उठता नहीं है, युवा और शक्तिशाली होने पर भी आलस्ययुक्त है, जिसके मन एवं संकल्प दुर्बल हैं, ऐसा दीर्घसूत्री और प्रमादी मनुष्य प्रज्ञा के मार्ग को प्राप्त नहीं कर सकता है। (मग्गवग्गो, जेतवन : २८०)

❋ जो सदैव सजग रहते हैं, दिन-रात शिक्षा ग्रहण करते रहते हैं, जो निर्वाण (मोक्ष) प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील हैं, उनके मल नष्ट हो जाते हैं। (कोधवग्गो : २२६)

❋ क्रोध को त्याग दो, मान का परित्याग करो, समस्त बंधनों को भंग करो। नाम और रूप में आसक्त न रहनेवाले तथा परिग्रहरहित अकिंचन पुरुष को दुःख संतप्त नहीं करते। (कोधवग्गो : २२१)

❋ अक्रोध से क्रोध पर विजय प्राप्त करो। असाधु को साधुता (भलाई) से जीतो। कृपण को दान देकर जीतो। झूठ बोलनेवाले को सत्य से जीतो। (कोधवग्गो : २२७)

❋ हे अतुल ! यह प्राचीन बात है, आज की नहीं। संसार चुप रहनेवाले की निंदा करता है और बहुत बोलनेवाले की भी। मितभाषी की भी निंदा करता है। संसार में अनिंदित कोई नहीं है। (कोधवग्गो : २२३)

❋ ऐसा व्यक्ति संसार में न पैदा हुआ है, न होगा, न आज कल है, जो पूर्णतः निन्दा के योग्य हो या पूर्णतः प्रशंसा के योग्य हो। (कोधवग्गो)

❋ विज्ञजन अपने-अपने हृदय में जानकर दोषरहित, मेधावी, प्रज्ञा और शील से युक्त मनुष्य की प्रशंसा करते रहते हैं। स्वर्ग के सिक्के (अशर्फी) की तरह उसकी निंदा कौन कर सकता है ? देवता भी उसकी प्रशंसा करते हैं, ब्रह्मा के द्वारा भी वह प्रशंसित होता है। (कोधवग्गो : २२९, २३०)

❋ विकार से शरीर की रक्षा करो। काया से संयत रहो। शरीर के दुश्चरित्र को त्यागकर शरीर से अच्छे चरित्र का पालन करो।

विकार से वाणी की रक्षा करो। वाणी से संयत रहो। वाणी के दुश्चरित्र को छोड़कर वाणी से अच्छे चरित्र का पालन करो।

क्रोध से मन की रक्षा करो। मन से संयत रहो। मन के दुश्चरित्र का परित्याग कर मन से अच्छे चरित्र का पालन करो।

जो धैर्यवान् शरीर से संयत हैं, वाणी से संयत हैं तथा मन से संयत हैं, वे निश्चय ही संयत हैं। (कोधवग्गो : २३१,२३२,२३३,२३४)

❋ स्वाध्याय न करना वेदमंत्रों का मल है। लीप-पोतकर घर की मरम्मत न करना घर का मल है। आलस्य शरीर का मल है। प्रमाद रक्षक का मल है। स्त्री का मल दुराचरण है। दानी का मल कृपणता है। इस लोक और परलोक के धर्म का मल पाप है। इन मलों से भी बड़ा मल अविद्या है। हे भिक्षुओं ! इस मल का त्याग कर तुम निर्मल बनो।

राग के समान ज्वाला नहीं है। द्वेष के समान बुरे ग्रह नहीं हैं। मोह के समान जाल नहीं है। तृष्णा के समान नदी नहीं है। (मलवग्गो : २४१,२४३,२५१)

❋

एकादशी माहात्म्य

[मोहिनी एकादशी : १४ मई २०००]

युधिष्ठिर ने पूछा : जनार्दन ! वैशाख मास के शुक्ल पक्ष में किस नाम की एकादशी होती है ? उसका क्या फल होता है ? उसके लिए कौन-सी विधि है ?

भगवान् श्रीकृष्ण बोले : यमराज ! पूर्वकाल में परम बुद्धिमान् श्रीरामचन्द्रजी ने महर्षि वसिष्ठजी से यही बात पूछी थी, जिसे आज तुम मुझसे पूछ रहे हो ।

श्रीराम ने कहा : भगवन् ! जो समस्त पापों का क्षय तथा सब प्रकार के दुःखों का निवारण करनेवाला, व्रतों में उत्तम व्रत हो, उसे मैं सुनना चाहता हूँ ।

वसिष्ठजी बोले : श्रीराम ! तुमने बहुत उत्तम बात पूछी है । मनुष्य तुम्हारा नाम लेने से ही सब पापों से शुद्ध हो जाता है । तथापि लोगों के हित की इच्छा से मैं पवित्रों में पवित्र उत्तम व्रत का वर्णन करूँगा । वैशाख मास के शुक्ल पक्ष में जो एकादशी होती है, उसका नाम 'मोहिनी' है । वह सब पापों को हरनेवाली और उत्तम है । उसके व्रत के प्रभाव से मनुष्य मोहजाल तथा पातक-समूह से छुटकारा पा जाते हैं ।

सरस्वती नदी के रमणीय तट पर भद्रावती नाम की सुन्दर नगरी है । वहाँ धृतिमान् नामक राजा, जो चन्द्रवंश में उत्पन्न और सत्यप्रतिज्ञ थे, राज्य करते थे । उसी नगर में एक वैश्य रहता था, जो धन-धान्य से परिपूर्ण और समृद्धिशाली था । उसका नाम था धनपाल । वह सदा पुण्यकर्म में ही लगा रहता था । दूसरों के लिये पौसला, कुआँ, मठ, बगीचा पोखरा और घर बनवाया करता था । भगवान् विष्णु की भक्ति में उसका हार्दिक अनुराग था । वह सदा शान्त रहता था । उसके पाँच पुत्र थे : सुमना, द्युतिमान्, मेधावी, सुकृत तथा धृष्टबुद्धि । धृष्टबुद्धि पाँचवाँ था । वह सदा बड़े-बड़े पापों में ही संलग्न रहता था । जुए आदि दुर्व्यसनों में उसकी बड़ी आसक्ति थी । वह वेश्याओं से मिलने के लिये लालायित रहता था । उसकी बुद्धि न तो देवताओं के पूजन में लगती थी और न पितरों तथा ब्राह्मणों के सत्कार में । वह दुष्टात्मा अन्याय के मार्ग पर चलकर पिता का धन बरबाद किया करता था । एक दिन वह वेश्या के गले में बाँह डाले चौराहे पर घूमता देखा गया । तब पिता ने उसे घर से निकाल दिया तथा बन्धु-बान्धवों ने भी उसका परित्याग कर दिया । अब वह दिन-रात दुःख और शोक में डूबा तथा कष्ट-पर-कष्ट उठाता हुआ इधर-उधर भटकने लगा । एक दिन किसी पुण्य के उदय होने से वह महर्षि कौण्डिन्य के आश्रम पर जा पहुँचा । वैशाख का महीना था । तपोधन कौण्डिन्य गङ्गाजी में स्नान करके आये थे । धृष्टबुद्धि शोक के भार से पीड़ित हो मुनिवर कौण्डिन्य के पास गया और हाथ जोड़ सामने खड़ा होकर बोला : 'ब्रह्मन् ! द्विजश्रेष्ठ ! मुझ पर दया करके कोई ऐसा व्रत बताइये, जिसके पुण्य के प्रभाव से मेरी मुक्ति हो ।'

कौण्डिन्य बोले : 'वैशाख के शुक्ल पक्ष में मोहिनी नाम से प्रसिद्ध एकादशी का व्रत करो । मोहिनी को उपवास करने पर प्राणियों के अनेक जन्मों के किये हुए मेरु पर्वत जैसे महापाप भी नष्ट हो जाते हैं ।'

वसिष्ठजी कहते हैं : श्रीरामचन्द्र ! मुनि का यह वचन सुनकर धृष्टबुद्धि का चित्त प्रसन्न हो गया । उसने कौण्डिन्य के उपदेश से विधिपूर्वक मोहिनी एकादशी का व्रत किया । नृपश्रेष्ठ ! इस व्रत के करने से वह निष्पाप हो गया और दिव्य देह धारण कर गरुड़ पर आरूढ़ हो सब प्रकार के उपद्रवों से रहित श्रीविष्णुधाम को चला गया । इस प्रकार यह मोहिनी का व्रत बहुत उत्तम है । इसके पढ़ने और सुनने से सहस्र गोदान का फल मिलता है । ['पद्मपुराण' से]

आस्था और विवेक

✲ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✲

जिससे दिखता है उसमें आस्था होनी चाहिए और जो दिखता है उसमें विवेक होना चाहिए। जगत की जितनी भी चीजें दिखती हैं वे सब पहले नहीं थीं, बाद में भी नहीं रहेंगी और अभी-भी 'नहीं' की ओर ही जा रही हैं। ...तो जो चीजें 'नहीं' की ओर जा रही हैं उनमें आस्था करने की कोई जरूरत नहीं है। उनका उपयोग भले कर लो, उपयोग करने की मना नहीं है लेकिन जो उनमें आस्था करता है वह ठीक से उनका उपयोग नहीं कर सकता। इसके विपरीत, जो आस्था के बिना उनका उपयोग कर लेता है वह उनमें बँधता नहीं है।

करोड़ीमल नामक एक सेठ ने सोने की ३७ ईंटें इकट्ठी कर लीं। वह रोज उन्हें निकालकर अगरबत्ती करता एवं सोचता कि : 'अब ३८ ईंटें करनी हैं...' उसकी आस्था थी की पैसे बढ़ें। उधर लड़के भले भूखे मरें...

बड़ा लड़का था थोड़ा चतुर। वह नकली चाबी ले आया। धंधे-रोजगार आदि में जरूरत पड़ने पर वह एक ईंट निकालता एवं उसकी जगह ठीक वैसी-की-वैसी सोने की पॉलिश करवायी हुई पीतल की ईंट रख देता। सेठ को लगता कि ३७ ईंटें ही हैं। इस प्रकार बड़े लड़के को जब-जब पैसे की जरूरत पड़ती, तब-तब एक-एक ईंट हटाकर उसकी जगह सोने की पॉलिश की हुई पीतल की ईंट रखता जाता और उन पैसों से अपना धंधा-रोजगार बढ़ाता जाता। इस प्रकार ईंटों का उपयोग होने लगा।

ऐसा करते-करते करोड़ीमल सेठ मरने को पड़ा। गोबर से जमीन लीपकर उसे उस पर सुला दिया गया। लड़के को हुआ कि मरते वक्त अगर पिताजी की आस्था उन ईंटों में ही रह गई तो पता नहीं, उनकी क्या गति हो ! अतः वह बोला :

''पिताजी ! बड़ों के आगे झूठ बोलना ठीक नहीं होता। लेकिन मैं उस समय सच बोलता तो आप ज्यादा जी नहीं पाते क्योंकि आप सोने की ईंटों में आस्था का सुख ले रहे थे। आप मुझे कहते थे कि तिजोरी का ख्याल रखना, ईंटें बढ़ाते रहना। लेकिन जो आपको ३७ ईंटें दिखती थीं, वे भी मैंने हटा दी हैं। अब बढ़ाना क्या है ?''

पिताजी : ''कैसे ?''

बेटा : ''हर चार-छः महीने में पैसे की जरूरत पड़ती थी अपने धंधे-रोजगार के लिये, भाइयों को पढ़ाने-लिखाने के लिये, घर का खर्च चलाने के लिये... किन्तु आपको दुःख न हो इस तरह से मैंने सोने की सब ईंटें बदल दी हैं। ये सब ईंटें पीतल की हैं।''

''पीतल की हैं ?'' यह कहकर सेठ मर गया। पीतल की ईंटों को सोने की मानकर जो सुख उसको मिल रहा था वह विवेक का सुख नहीं, वरन् आस्था का सुख था। जगत में की हुई आस्था का सुख ज्यादा टिकता नहीं है और परमात्मा में की हुई आस्था का सुख कभी खूटता नहीं है। अतः आस्था करो तो परमात्मा में करो और जगत की चीजों का विवेक से उपयोग करके अपना काम बना लो- यही सफल जीवन जीने की कुंजी है।

✲

प्रकृति प्रसन्नचित्त एवं उद्योगी कार्यकर्त्ता को हर प्रकार से सहायता करती है।
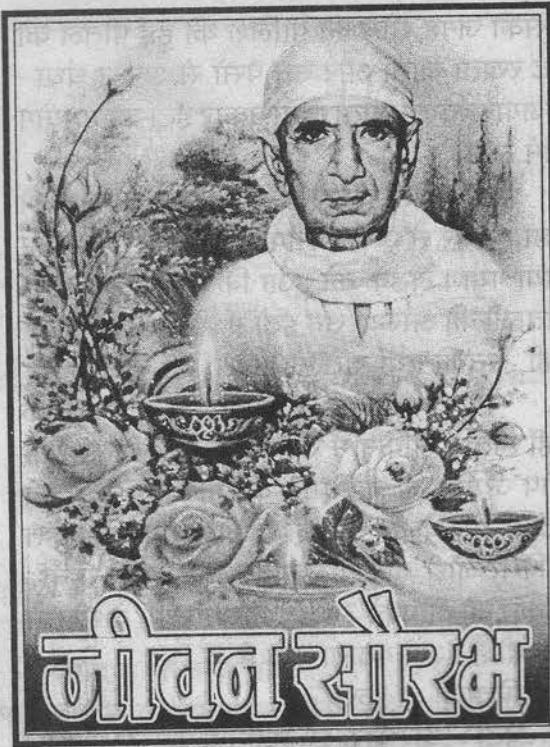
योगसिद्ध ब्रह्मलीन ब्रह्मनिष्ठ

प्रातःस्मरणीय पूज्यपाद स्वामी श्री

लीलाशाहजी महाराज : एक दिव्य विभूति

[गतांक का शेष]

एक बार गाँव के नगरसेठ ने उसे अपने पास बुलाया। उसने एक लाल टोपी बनायी थी। नगरसेठ ने वह टोपी ज्ञानचंद को देते हुए कहा :

'यह टोपी मूर्खों के लिए है। तेरे जैसा महान् मूर्ख मैंने अभी तक नहीं देखा, इसलिए यह टोपी तुझे पहनने के लिए देता हूँ। इसके बाद यदि कोई तेरे से भी ज्यादा बड़ा मूर्ख दिखे तो तू उसे पहनने के लिए दे देना।'

ज्ञानचंद शांति से वह टोपी लेकर घर वापस आ गया। एक दिन वह नगरसेठ खूब बीमार पड़ा। ज्ञानचंद उससे मिलने गया और उसकी तबियत के हालचाल पूछे। नगरसेठ ने कहा :

'भाई ! अब तो जाने की तैयारी कर रहा हूँ।'

ज्ञानचंद ने पूछा : 'कहाँ जाने की तैयारी कर रहे हो ? वहाँ आपसे पहले किसी व्यक्ति को सब तैयारी करने के लिए भेजा कि नहीं ? आपके साथ आपकी स्त्री, पुत्र, धन, गाड़ी, बंगला वगैरह आयेगा कि नहीं ?'

'भाई ! वहाँ कौन साथ आयेगा ? कोई भी साथ नहीं आनेवाला है। अकेले ही जाना है। कुटुंब-परिवार, धन-दौलत, महल-गाड़ियाँ सब छोड़कर यहाँसे जाना है। आत्मा-परमात्मा के सिवाय किसीका साथ नहीं रहनेवाला है।'

सेठ के इन शब्दों को सुनकर ज्ञानचंद ने खुद को दी गयी वह लाल टोपी नगरसेठ को वापस देते हुए कहा : 'आप ही इसे पहनो।'

नगरसेठ : 'क्यों ?'

ज्ञानचंद : 'मुझसे ज्यादा मूर्ख तो आप हैं। जब आपको पता था कि पूरी संपत्ति, मकान, परिवार वगैरह सब यहीं रह जायेगा, आपका कोई भी साथी आपके साथ नहीं आयेगा, भगवान के सिवाय कोई भी सच्चा सहारा नहीं है, फिर भी आपने पूरी जिंदगी इन्हीं सबके पीछे क्यों बरबाद कर दी ?

सुख में आन बहुत मिल बैठत रहत चौदिस घेरे।
विपत पड़े सभी संग छोड़त कोउ न आवे नेरे॥

जब कोई धनवान एवं शक्तिवान होता है तब सभी 'सेठ... सेठ... साहब...साहब...' करते रहते हैं और अपने स्वार्थ के लिए आपके आसपास घूमते रहते हैं परंतु जब कोई मुसीबत आती है तब कोई भी मदद के लिए पास नहीं आता। ऐसा जानने के बाद भी आपने क्षणभंगुर वस्तुओं एवं संबंधों के साथ प्रीति की, भगवान से दूर रहे एवं अपने भविष्य का सामान इकट्ठा न किया तो ऐसी अवस्था में आपसे महान् मूर्ख दूसरा कौन हो सकता है ? गुरु तेगबहादुरजी ने कहा है :

करणो हुतो सु ना कीओ परिओ लोभ कै फंध।
नानक समिओ रमि गइओ अब किउ रोवत अंध॥

सेठजी ! अब तो आप कुछ भी नहीं कर सकते। आप भी देख रहे हो कि कोई भी आपकी

सहायता करनेवाला नहीं है।'

क्या वे लोग महामूर्ख नहीं हैं जो जानते हुए भी मोह-माया में फँसकर ईश्वर से विमुख रहते हैं ? संसार की चीजों में, संबंधों में आसक्ति न रखते हुए प्रभु-स्मरण, भजन, ध्यान एवं सत्पुरुषों का संग एवं दान-पुण्य करते हुए जिंदगी व्यतीत करते तो इस प्रकार दुःखी होने एवं पछताने का समय न आता।''

भगवान किस पर ज्यादा प्रसन्न रहते हैं ?

२५ अप्रैल १९६१, श्रीकृष्ण गौशाला, आगरा।

पूज्य स्वामीजी से किसीने पूछा : ''स्वामीजी ! भगवान किस व्यक्ति पर ज्यादा प्रसन्न होते हैं ?''

पूज्य स्वामीजी : ''भगवान भक्त, दाता, नम्र एवं शूरवीर- इन चार प्रकार के व्यक्तियों पर ज्यादा प्रसन्न होते हैं।

(१) भक्त : भक्त ऐसा हो जो बालक अवस्था से लेकर जवानी एवं बुढ़ापे तक का अपना पूरा जीवन परमेश्वर की भक्ति में बिताये।

(२) दाता : दाता ऐसा होना चाहिए जो निर्धन होने के बावजूद भी धर्म में, दान में प्रीति रखता हो।

(३) नम्र : नम्र माने ऐसा व्यक्ति जो धनवान् एवं कुलीन होते हुए भी नम्र हो।

(४) शूरवीर : शूरवीर ऐसा होना चाहिए जो धर्म एवं संस्कृति के लिए अपने सिर का भी बलिदान कर दे एवं इन्द्रियजीत हो।'' (क्रमशः)

जिस क्षण आप सांसारिक पदार्थों में सुख की खोज करना छोड़ देंगे और स्वाधीन हो जायेंगे, अपने अन्दर की वास्तविकता का अनुभव करेंगे, उसी क्षण से आपको ईश्वर के पास जाना नहीं पड़ेगा। ईश्वर स्वयं आपके पास आयेंगे। यही दैवी विधान है। (*'जीवन रसायन' पुस्तक से*)

कृपया सूरत आश्रम के नये फोन नंबर नोट कर लें :
फोन : (०२६१) ७७२२०१, ७७२२०२.

राजा विक्रमादित्य और विस्मृति देवी

✻ संत श्री आसारामजी बापू के सत्संग-प्रवचन से ✻

एक बार राजा विक्रमादित्य राज-काज के बोझ से थके, जगत के चिंतन से थके-माँदे, मन बहलाने के लिए आखेट करने निकल पड़े।

काम बदलने से मन बहल जाता है।

आखेट के लिए निकले हुए राजा विक्रमादित्य एक शिकार के पीछे दौड़े... खूब दौड़े... आखिरकार भूख-प्यास से व्याकुल एवं थके-माँदे विक्रमादित्य एकान्त अरण्य में विश्राम के लिए बैठ गये।

उन्होंने एक आश्चर्य देखा। कोई गैबी आवाज उनके कानों में पड़ी। कुछ देवियाँ आपस में वाद-विवाद करती हुई आकाश मार्ग से जा रही थीं। विक्रमादित्य को आवाज सुनाई पड़ी कि : ''मैं लक्ष्मी हूँ। मुझसे बड़ी तुम नहीं हो सकती। मैं निर्धन के पास जाती हूँ तो उसकी बाछें खिल जाती हैं, वह धनवान् बन जाता है। मैं जिसके पास जाती हूँ वह दुनिया की हर चीज खरीद सकता है। तुम अपने को बड़ी मानती हो ? पगली हो पगली ! किसीको बोलना मत, लोग हँसेंगे। लक्ष्मी से बड़ा कोई नहीं होता। संपत्तिवान् के दोष भी ढँक जाते हैं, सरस्वती !''

इतने में सरस्वती बोली : ''रहने दे, बहन ! रहने दे। लक्ष्मी कितनी भी हो लेकिन यदि व्यक्ति के पास ज्ञान नहीं है तो लोग उसको ठग ले जायेंगे। लक्ष्मी है और उसका सदुपयोग करने का ज्ञान नहीं है तो व्यक्ति कुएँ में जा पड़ेगा। ज्ञान सबसे बड़ा होता है, सरस्वती की उपासना सबसे बड़ी होती है। लक्ष्मी के बिना भी विद्वान् पूजे जाते हैं और जहाँ विद्या होती है वहाँ लक्ष्मी अपने-आप आती है। विद्या से व्यक्ति इस लोक एवं परलोक दोनों में पूजा जाता है और विद्या से अविद्या को मिटाकर मुक्ति भी पा लेता है। लक्ष्मी तो भोग में गिराती है और विद्या योग में ले जाती है।''

तब शक्ति देवी ने कहा : ''बड़ा विद्वान् हो, बड़ा धनवान् हो लेकिन शक्ति न हो तो शक्तिविहीन मनुष्य को लोग निचोड़ डालेंगे। शक्ति की उपासना ही सही उपासना है। मनुष्य जीवन की परम आवश्यकता है शक्ति। शक्ति ही सबसे बड़ी है। शक्तिशाली आदमी लक्ष्मी अर्जित कर लेगा, शक्तिशाली आदमी विद्या अर्जित कर लेगा, मनचाहा भोग पा लेगा, मनचाही यात्रा कर लेगा, मनचाहे रहस्य खोज लेगा और शक्तिशाली मनुष्य मनचाहे विद्वानों एवं धनवानों को अपने अधीन कर लेगा। मेरे होते हुए आप सब आपस में क्यों विवाद कर रही हैं ?''

तब लक्ष्मी और सरस्वती दोनों एक साथ बोलीं : ''रहने दे, शक्ति ! रहने दे। कई शक्तिशाली होते हैं जो पैसे के बल से बिक जाते हैं, कई शक्तिशाली होते हैं जिन्हें बुद्धिमान् अपने इशारों पर नचाते रहते हैं।''

आखिर तो तीनों सखियाँ थीं। लड़-लड़कर कब तक लड़तीं ? उन्होंने कहा : ''सुना है राजा विक्रमादित्य न्याय करने में बड़े कुशल हैं। स्वर्ग तक में विक्रमादित्य के न्याय की सराहना होती है। आज वे आखेट करके थके हैं और आराम कर रहे हैं। चलो, हम उनसे अपना न्याय कराएँ।''

वे देवियाँ विक्रमादित्य के सामने प्रगट हुई और बोलीं : ''सम्राट ! हम तीनों का फैसला करें।''

तभी चौथी देवी ने कहा : ''तीनों का नहीं, मेरा भी। मैं अभी तक चुप बैठी थी। ये तीनों देवियाँ अपनी-अपनी डींग हाँक रही थीं लेकिन मेरे बिना इनकी दाल तक नहीं गलती। राजन् ! मैं विस्मृति देवी हूँ, शांति देवी हूँ। हम चारों का न्याय करें कि हममें से कौन-सी देवी बड़ी है।''

विक्रमादित्य : ''मैं धरती के लोगों का ही न्याय करता था किन्तु आज आप लोग मेरे पास आयी हैं। मैं प्रयत्न करूँगा कि आप लोगों की सेवा हो जाये, आप लोगों को उचित न्याय मिल जाये। अतः आप लोग कृपया अपना-अपना परिचय दें।''

लक्ष्मी : ''सम्राट ! मैं लक्ष्मी हूँ। लक्ष्मीविहीन व्यक्ति किसी काम का नहीं होता। जीवन में लक्ष्मी की अत्यावश्यकता है। धन से भोग, ऐश्वर्य, यश सब कुछ मिल जाता है। लक्ष्मी की लीला अपरंपार है। पैसा ही रंग-रूप है, पैसा ही माई-बाप है। बेटा पैसा कमाता है तो माँ-बाप उसे प्रेम करते हैं, पत्नी स्नेह करती है। पैसेवाले के सब मित्र बन जाते हैं, गरीब का कौन है ? लक्ष्मी ही सर्वोपरि है।''

तब सरस्वती बोली : ''छोड़ो भी... विद्या ही सर्वोपरि है। विद्या से ही सब प्राप्त होता है।''

फिर शक्ति ने भी अपना परिचय दिया।

सम्राट बोला : ''मैं बहुत थका हुआ हूँ फिर भी न्याय देने की कोशिश करूँगा। लेकिन पहले कोई मेरी पीड़ा को और दुःख को हर ले ताकि मैं स्वस्थ होकर न्याय कर सकूँ। निर्दुःख निश्चिन्त आदमी ही ठीक न्याय कर सकता है। मुझे थोड़ा निर्दुःख, निश्चिन्त बना दीजिए। थका-हारा व्यक्ति क्या सही निर्णय दे पायेगा ? पीड़ित आदमी क्या ठीक जवाब देगा ? आप अपने-अपने बल से मुझे स्वस्थ कर दीजिए।''

तब लक्ष्मी ने अपनी यौगिक भाषा में राजा के अंतर में प्रेरणा की : ''तुम्हारा यह राज्य और भी विशाल कर दूँगी। राजन् ! तुम्हारा बहुत बड़ा राज्य होगा। तुम्हें और भी संपदा और सुख की सामग्रियाँ मिलेंगी, और भी हीरे-जवाहरात होंगे, और भी माणिक मोती होंगे, तुम धनिक और सुखी होगे। मैं तुम्हें बहुत-बहुत धनवान् कर दूँगी।''

विक्रमादित्य : ''हे देवी ! आपके विचारों से मेरी थकान और पीड़ा नहीं मिटी। सरस्वती देवी ! अब आप अपनी शक्ति लगाइए।''

सरस्वती : ''तुम सोचो, 'पीड़ा शरीर को हो रही है, दुःख मन को हो रहा है, आत्मा को नहीं हो रहा है। मैं तो नित्य, शुद्ध, बुद्ध और मुक्त हूँ।' ऐसा सोचो... चिंतन करो... विद्या का आश्रय लो, राजन् !''

विक्रमादित्य : ''देवी ! पीड़ा में चिंतन भी ठीक से नहीं होता। सोचने की क्षमता दब रही है। हे शक्ति देवी ! अब आप ही कुछ करिये।''

शक्ति : ''अथाह शक्ति, अथाह बल तुममें है, राजन् ! अपने पौरुष को जगाओ, बल को जगाओ, अपनी शक्ति को जगाओ। शक्ति के आगे सारे दुःख और थकान भाग जाते हैं।''

विक्रमादित्य : ''मैं थका हुआ हूँ, देवी ! बल कैसे जगाऊँ ?''

अब विस्मृति देवी आगे आयी और विक्रमादित्य को व्याकुल देखकर बोली : ''राजन् ! भूल जाओ। 'मैं आखेट को आया था...' यह भूल जाओ। 'मैं खूब दौड़ा था...' यह भूल जाओ। 'मेरी वाहवाही हो रही है... मैं सम्राट हूँ...' भूल जाओ। 'मेरे शत्रु हैं... मेरे प्रशंसक हैं...' यह भी भूल जाओ। 'मुझे यहाँ जाना है... यह पाना है...' भूल जाओ। विस्मृति... विस्मृति... विस्मृति... सब भूलते जाओ... निश्चिन्त होते जाओ... सम्राट ! यह सम्राट पद और सम्राट पद के भोग नश्वर हैं, फुरनामात्र हैं, उन्हें भूलते जाओ। कई सम्राट इस धरती पर पैदा हुए, दौड़े, थके और अंत में विस्मृति देवी की गोद में चिरकाल से शयन कर रहे हैं। पृथु, पुरुरवा, गाधि, नहुष, भरत, अर्जुन, मान्धाता, सगर, श्रीराम, खट्वांग, धुन्धुहा, रघु, तृणविन्दु, ययाति, शर्याति, शान्तनु, भगीरथ, कुवलयाश्व, नैषध, नृग,

हिरण्यकशिपु, वृत्रासुर, रावण, नमुचि, शंबर, भौम आदि जब विद्यमान थे, उस समय उन्होंने कितनी-कितनी उपलब्धियाँ अर्जित कीं, कितनी-कितनी पताकाएँ फहराईं लेकिन सब विस्मृति की गोद में चले गये। ऐसे ही राजन्! तुम भी एक दिन हमेशा के लिए विस्मृति की गोद में चले जाओगे। राजन्! जब अपना मन, अपनी बुद्धि, अपनी इन्द्रियाँ सात्त्विक हो जायें, ज्ञान और तपस्या में रुचि हो जाये तब समझना कि सत्य युग है। जब मन में कामना आये तब समझना कि रजोगुणी वृत्ति त्रेता है। जब लोभ, असंतोष आये तब समझना कि द्वापर है और जब मन में छल-कपट, माया, तन्द्रा, निद्रा, हिंसा, विषाद आये तब समझना कि कलियुग है।

राजन्! वह बड़भागी है जो जीते-जी 'मैं-मेरे' की विस्मृति करके आत्मविश्रांति पाता है। आलस्य नहीं, निद्रा नहीं, प्रमाद नहीं अपितु सात्त्विक विश्रांति। विश्रांति... विश्रांति... विश्रांति... पवित्र शांति... राग-द्वेषरहित अवस्था...''

विक्रमादित्य : ''धन्य हो देवी! मेरी थकान मिटी। अहाहा... आपके वचन प्रिय लग रहे हैं, शांति मिल रही है... शक्ति बढ़ रही है।''

विस्मृति : ''राजन्! थकान मिटी न मिटी, उसे भी भूलते जाओ... विस्मृति... विस्मृति... संसार फुरनामात्र है, निष्फुर ब्रह्म है। हे निष्फुर ब्रह्म! तुम अपनी महिमा में डूबते जाओ। थकान प्रकृति में होती है, शक्ति प्रकृति में होती है। सब कुछ प्रकृति में है और परिवर्तित होता रहता है। तुम उस परिवर्तन को भी भूलते जाओ...''

विक्रमादित्य : ''देवी! बहुत अच्छा लग रहा है... धन, संपदा, विद्या, शक्ति सब भूलने से अच्छा लग रहा है...''

विस्मृति : ''तुम विस्मृति की गहराई में डूबते जाओ, जहाँ शांत ब्रह्म के सिवा कुछ भी नहीं है। विस्मृति... विस्मृति में खो जाओ। विस्मृति से, निश्चिन्तता से दोष निवृत्त होने लगते हैं, आवश्यक बल प्राप्त होने लगता है, सारे सामर्थ्य, सारी शक्तियाँ, सारी योग्यताएँ निखरती हैं लेकिन सम्राट! योग्यताएँ निखरें उसकी भी स्मृति न करो। विस्मृति... विस्मृति... तंद्रा नहीं, निद्रा नहीं, आलस्य नहीं, प्रमाद नहीं, मनोराज्य नहीं, केवल 'मैं-मेरे' की और 'तू-तेरे' की विस्मृति। हरि ॐ शांति... हरि ॐ शांति... हरि ॐ शांति... खूब शांति... ॐ शांति... ॐ शांति... ॐ शांति... आत्मशांति... परमात्मशांति... निःसंकल्प अवस्था। आनंद आ रहा है... भूल जाओ। बल बढ़ रहा है... भूल जाओ। न बल है न निर्बलता, न आनंद है न सुख-दुःख। सुख भी मन की वृत्ति है और दुःख भी मन की वृत्ति है। तुम सुख-दुःख से परे हो... अवाच्य परम पद... जहाँ वाणी की गति नहीं। विक्रमादित्य! तुम्हारे जैसा पुरुषार्थ करनेवाला अगर निःसंकल्प नारायण में विश्रांति नहीं पायेगा तो और कौन पायेगा? डूबते जाओ अपने आप में... शांत आत्मा... चैतन्य आत्मा... अखंड आत्मा... व्यापक आत्मा... न माई न भाई। ये सब शरीर और मन के फुरनेमात्र हैं... सारा विश्व उस विस्मृति के सागर में विलय हो जाने दो। जैसे सागर से तरंगें उठती हैं, बुलबुले उठते हैं, झाग और फेन उठते हैं लेकिन उस सागर की गहराई में शांति है, ऐसे ही तुम आत्म-उदधि में चले जाओ। परम शांति में... परम माधुर्य में... भूल जाओ अपने पापों को, भूल जाओ अपने पुराने दुष्कृत्यों को और भूल जाओ अपने सत्कृत्यों को। भूल जाओ अपने मित्रों को और भूल जाओ अपने शत्रुओं को। भूल जाओ पाने को और भूल जाओ खोने को... भूल जाओ... भूल जाओ... भूल जाओ... निश्चिन्त नारायण के साथ एक होते जाओ। तुम्हारा स्वरूप शुद्ध-बुद्ध है, तुम्हारा स्वरूप आनंदकंद है, तुम्हारा स्वरूप चैतन्य है, सम्राट! सम्राटपने के भान को भी भूल जाओ, सुखी हो जाओ। मुझ चैतन्यस्वरूप, चिदावली, आद्यशक्ति चिद्घन चेतना में लीन होते जाओ...''

विक्रमादित्य : ''अच्छा लग रहा है, माँ! चिंताएँ मिटीं, थकान मिटी, दुःख मिटे। न शक्ति की आवश्यकता है न कमजोरी का भय है, न यश की लालच है न अपयश का भय है, न मान की इच्छा है न अपमान का भय है, न जीने की आसक्ति है न मृत्यु का भय है।''

पुनः विस्मृति ने कहा : ''सम्राट! और गोता मारो। वत्स! भूल जाओ। जीने की इच्छा नहीं है, इसे भी भूल जाओ और मरने का भय नहीं है इसको भी भूल जाओ। आओ, मेरी गोद में आओ, पूर्ण बन जाओ। तुम्हारा स्वरूप पूर्ण आत्मा है... संकल्परहित अवस्था में आ जाओ वत्स! जो तुम्हारा वास्तविक स्वरूप है। इस संकल्परहित अवस्था में, शांत अवस्था में, आत्मसुख की अवस्था में आकर मनुष्य फिर कभी भयभीत नहीं होता। वह परम निर्भय हो जाता है। वह अकाल तत्त्व को पाता है। तुम आ जाओ अपने अकाल स्वभाव में। और सब भूल जाओ, लाल!''

सम्राट विक्रमादित्य वास्तविक सम्राट बने जा रहे हैं... जहाँ दुःख की भी गंध नहीं और सुख की भी गंध नहीं... जहाँ पुण्य का गर्व नहीं और पाप की हीनता नहीं... जहाँ गरीबी की पीड़ा नहीं और अमीरी का अहंकार नहीं... जहाँ मित्र का आकर्षण नहीं और शत्रु का भय नहीं...

निर्भय जपे सकल भव मिटे, संत कृपा ते प्राणी छूटे।

जीवात्मा बंधनों से मुक्त हो जाता है... अपनी इन्द्रियों

से, मन से, बुद्धि से और अन्तःकरण से माने हुए संबंधों को जो विस्मृतिरूपी माता की गोद में छोड़ देता है वह ब्रह्ममय, निःशोक, निरंजन, नारायणमय हो जाता है।

विक्रमादित्य कहते हैं : ''माँ ! बहुत अच्छा लग रहा है, उसका वर्णन नहीं कर सकता... दौड़ रहा था शक्ति के लिए, भाग रहा था लक्ष्मी के लिए, प्रयत्न कर रहा था विद्याओं के लिए लेकिन सारी विद्याएँ, सारी शक्तियाँ, सारी सम्पत्तियाँ इसी आत्मदेव से प्रगट होती हैं, इसका पता ही न था। 'मैं' और 'मेरे' की विस्मृति, 'तू' और 'तेरे' की विस्मृति, पाप और पुण्य के भावों की विस्मृति से जन्मों-जन्मों की थकान मिटती जा रही है...''

अपने आत्म-परमात्मस्वभाव में सम्राट विक्रमादित्य की ब्रह्माकार वृत्ति बनती जा रही थी।

ब्राह्मी स्थिति प्राप्त कर, कार्य रहे ना शेष।
मोह कभी न ठग सके, इच्छा नहीं लवलेष ॥

अब लक्ष्मी ने पूछा : ''सम्राट ! सबसे बड़ी लक्ष्मी है, सरस्वती है या शक्ति है ?''

विक्रमादित्य : ''माँ ! आप तीनों देवियों के द्वारा किये गये प्रयास से भी मुझे वह सुख और शांति नहीं मिली जो कि मुझे विस्मृति देवी के सान्निध्य से मिली। हे लक्ष्मी देवी ! क्षमा करना। कितना भी धन हो प्राणी के पास, फिर भी वह पूर्ण सुखी नहीं हो सकता है। कितनी भी विद्या हो प्राणी के पास फिर भी वह पूर्ण सुखी नहीं हो सकता है।

पढ़ पढ़ के पत्थर भया, लिख लिख भया है चोर।
जा करनी ते साहिब मिले, वह करनी कछु और ॥

पढ़-पढ़कर तो कठोरता आ जाती है। हे सरस्वती देवी ! क्षमा करना। इस लोक एवं परलोक की कितनी भी विद्या मिल जाये, लेकिन यह लोक एवं परलोक जिसकी सत्ता से प्रतीत होता है उसमें जब तक विश्रांति नहीं मिली तब तक मनुष्य के संपूर्ण दोष दूर नहीं होते, संपूर्ण दुःख निवृत्त नहीं होते और आवश्यक सामर्थ्य भी नहीं मिलता। हे शक्ति देवी ! कितना भी बाहुबल हो, जनबल हो लेकिन मृत्यु के पार ले जाने का सामर्थ्य इस बाहुबल और जनबल में नहीं है। निर्बल के बल जो राम हैं, उन्हीं राम में आराम पाने से ही प्राणी भवपार होता है। हे शक्ति देवी ! विश्रांतिस्वरूप ब्रह्म की तुम एक किरण हो। हे सरस्वती देवी ! तुम दूसरी किरण हो। हे लक्ष्मी देवी ! तुम तीसरी किरण हो लेकिन माँ विस्मृति देवी ने मुझे उस ब्रह्म में पुनः पहुँचाया है और मैं ब्रह्मस्वरूप हुआ हूँ। मेरी वृत्ति जागी तो मैं भी किरण होकर दिख रहा हूँ, लेकिन जब मैं उस ब्रह्मस्वरूप में विश्रांति पाता हूँ तब मुझे लगता है कि तुम सभी मुझ ही में से प्रगट हुई हो।''

ॐ आनंद... ॐ शांति... ॐ माधुर्य...

पुदीना

चटनी के रूप में प्रयुक्त किया जानेवाला पुदीना एक सुगंधित एवं उपयोगी औषधि है।

आयुर्वेद के मतानुसार पुदीना स्वादिष्ट, रुचिकर, पचने में हल्का, तीक्ष्ण, तीखा, कड़वा, पाचनकर्त्ता, उल्टी मिटानेवाला, हृदय को उत्तेजित करनेवाला, विकृत कफ को बाहर लानेवाला, गर्भाशय-संकोचक, चित्त को प्रसन्न करनेवाला, जख्मों को भरनेवाला, कृमि, ज्वर, विष, अरुचि, मंदाग्नि, अफारा, दस्त, खांसी, श्वास, निम्न रक्तचाप, मूत्राल्पता, त्वचा के दोष, हैजा, अजीर्ण, सर्दी-जुकाम आदि को मिटानेवाला है।

पुदीने में विटामिन 'ए' प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। उसमें रोगप्रतिकारक शक्ति उत्पन्न करने की अद्‌भुत शक्ति है एवं पाचक रसों को उत्पन्न करने की भी क्षमता है। अजवायन के सभी गुण पुदीने में पाये जाते हैं।

पुदीने के बीज से निकलनेवाला तेल स्थानिक एनेस्थेटिक, पीड़ानाशक एवं जंतुनाशक होता है। यह दंतपीड़ा एवं दंतकृमिनाशक होता है। इसके तेल की सुगंध से मच्छर भाग जाते हैं।

विशेष : पुदीने का ताजा रस लेने की मात्रा है ५ से २० ग्राम। पत्तों का चूर्ण लेने की मात्रा ३ से ६ ग्राम। काढ़ा लेने की मात्रा २० से ४० ग्राम। अर्क लेने की मात्रा २० से ४० ग्राम। बीज का तेल लेने की मात्रा आधी बूँद से ३ बूँद।

* औषधि-प्रयोग *

१. मलेरिया : पुदीने एवं तुलसी के पत्तों का

काढ़ा बनाकर सुबह-शाम लेने से अथवा पुदीना एवं अदरक का रस १-१ चम्मच सुबह-शाम लेने से लाभ होता है।

२. वायु एवं कृमि : पुदीने के २ चम्मच रस में एक चुटकी काला नमक डालकर पीने से गैस, वायु एवं पेट के कृमि नष्ट होते हैं।

३. पुराना सर्दी-जुकाम एवं न्यूमोनिया : पुदीने के रस की दो-तीन बूँदें नाक में डालने एवं पुदीने तथा अदरक के १-१ चम्मच रस में शहद मिलाकर दिन में दो बार पीने से लाभ होता है।

४. अनार्तव-अल्पार्तव : मासिक धर्म न आने पर या कम आने पर अथवा वायु एवं कफदोष के कारण बंद हो जाने पर पुदीने के काढ़े में गुड़ एवं चुटकी भर हींग डालकर पीने से लाभ होता है। इससे कमर की पीड़ा में भी आराम होता है।

५. आँत का दर्द : अपच, अजीर्ण, अरुचि, मंदाग्नि, वायु आदि रोगों में पुदीने के रस में शहद डालकर लें अथवा पुदीने का अर्क लें।

६. दाद : पुदीने के रस में नींबू मिलाकर लगाने से दाद मिट जाती है।

७. उल्टी-दस्त, हैजा : पुदीने के रस में नींबू का रस, प्याज अथवा अदरक का रस एवं शहद मिलाकर पिलाने अथवा अर्क देने से ठीक होता है।

८. बिच्छू का दंश : पुदीने का रस दंशवाले स्थान पर लगायें एवं उसके रस में मिश्री मिलाकर पिलायें। यह प्रयोग तमाम जहरीले जंतुओं के दंश के उपचार में काम आ सकता है।

९. हिस्टीरिया : रोज पुदीने का रस निकालकर उसे थोड़ा गर्म करके सुबह-शाम नियमित रूप से देने पर लाभ होता है।

१०. मुख-दुर्गंध : पुदीने के रस में पानी मिलाकर अथवा पुदीने के काढ़े का घूँट मुँह में भरकर रखें, फिर उगल दें। इससे मुख-दुर्गंध का नाश होता है।

- वैद्यराज अमृतभाई
साँईं श्री लीलाशाहजी उपचार केन्द्र, संत श्री आसारामजी आश्रम, जहाँगीरपुरा, वरियाव रोड, सूरत।

*

'...तो एक घण्टे में ही प्राण-पखेरू उड़ जाते!'

मेरे चचेरे भाई के पैर में कोब्रा नाग ने दंश मार दिया था जिसके फलस्वरूप केवल आधे घण्टे के भीतर ही उसके पूरे शरीर में जहर फैल गया और वह बेहोश हो गया। लुठपवाला सरकारी अस्पताल तक पहुँचते ही वह लाश के समान हो गया। वहाँ से उसे गोधरा ले जाया गया किन्तु वहाँ भी डॉक्टर के न होने से उसे बड़ौदा ले जाना पड़ा।

ट्रेन से बड़ौदा ले जाते वक्त गाड़ी में सभी निराश होकर बैठे थे। इतने में मेरी नजर गाड़ी में लगे हुए पूज्य बापू के फोटो पर पड़ी और मुझे ऐसा लगा मानों, पूज्यश्री कह रहे हों : **'ईश्वर के सिवाय कहीं भी मन लगाया तो अंत में रोना ही पड़ेगा।'**

मैंने मन-ही-मन पूज्य गुरुदेव से प्रार्थना की :

''हे गुरुदेव! अब केवल आप ही मेरे प्रिय भाई को बचा सकते हैं। यदि मेरा यह भाई ठीक हो जायेगा तो मैं स्वयं दीक्षा लूँगा एवं भाई को भी आपकी ध्यानयोग शिविर भरवाने लाऊँगा।''

प्रार्थना के पूरे होते ही पूज्यश्री के ललाट में से एक दिव्य प्रकाश निकला और मेरे भाई के शरीर में प्रवेश कर गया। उसी समय उसका निस्तेज, निश्चल शरीर चेतन हो उठा। बाद में यह सब जानकर डॉक्टर भी आश्चर्यचकित होकर कह उठे: ''असंभव !!! मुख्य नस में दंश लगा है, वह भी कोब्रा जाति के नाग का। एक घंटे में ही प्राण-पखेरू उड़ जाये ऐसी हालत थी। किसी पुण्य ने ही इसको बचा लिया है।''

परम पूज्य बापू ने ही मेरे भाई को नवजीवन प्रदान किया है। पूज्य बापू केवल सद्गुरु ही नहीं, वरन् अवतारी महापुरुष हैं। उनके श्रीचरणों में कोटि-कोटि प्रणाम!

- शंकरभाई के. पटेल
जांबुघोड़ा, लुणावाडा, जि. पंचमहाल (गुज.).

प्रकाशा (महा.) : २५-२६ मार्च। नगरों-महानगरों के लोग तो पूज्यश्री के सत्संग-प्रवचन में भागीदार होते ही हैं, पर प्रकाशा के सरलहृदय ग्राम्यजनों ने भी अपने ग्राम में गुरुदेवश्री के आत्मस्पर्शी सत्संग आयोजन करने का गौरव प्राप्त किया। प्रकाशा की धर्मप्रेमी जनता के अलावा दूर-दराज से बड़ी संख्या में आये हुए लोग भी सत्संग-प्रवचन से लाभान्वित हुए।

मनावर (म. प्र.) : २६ से २८ मार्च। प्रथम दो दिन श्री सुरेशानंदजी के प्रवचन के बाद अंतिम दिन पू. गुरुदेवश्री ने गीता-भागवत के ज्ञानामृत की वर्षा की। भारतीय संस्कृति की अक्षुण्णता व सनातनता का बोध कराते हुए पूज्यश्री ने कहा :

''**भारतीय संस्कृति ने विदेशियों के अनेक आघात सहे, फिर भी यह अडिग है। भारतीय संस्कृति को अभी तक न तो कोई मिटा सका है, न मिटा सकता है।**''

राजपुरा (म. प्र.) : २९ मार्च। राजपुरा में आस-पास के अनेक गाँवों से लोग ट्रैक्टर में भर-भर के आये। इस ग्राम में 'मिनी' कुंभ-सा दृश्य दृष्टिगोचर हो रहा था। धर्मपिपासु ग्रामवासी भक्तजन अत्यंत उत्साहित, आनंदित, प्रफुल्लित व गद्‌गद् नजर आ रहे थे। आयोजित भंडारे में गरीब आदिवासी व अन्य सभी वर्गों के हजारों-हजारों लोगों ने भाग लिया।

वर्षों से मंदिर बनाकर उद्‌घाटन का इंतजार कर रहे थे राजपुरावासी। अंततः वह घड़ी आ गयी और पूज्यश्री के करकमलों से दो भव्य मंदिरों का उद्‌घाटन हुआ।

इन्दौर आश्रम : ३० मार्च से २ अप्रैल। चार दिवसीय ध्यानयोग साधना शिविर में ज्ञान-भक्तियोग के अनुभवनिष्ठ पू. गुरुदेवश्री ने अपनी अनुभवसंपन्न वाणी में विभिन्न प्रकार की साधनाएँ बताईं। स्वस्थ शरीर के लिए आरोग्य-साधना तथा आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक जीवन में सफलता के लिए प्राणशक्ति-साधना, चरित्र-साधना, इच्छाशक्ति-साधना व हृदय साधना के अनेक सूत्र प्रदान किये।

पलाश के पुष्पों के रंग से हमारे शरीर के सप्तधातु के सप्त रंगों में गर्मी झेलने और मानसिक विक्षेप झेलने की क्षमता बढ़ती है। ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की किरणें पृथ्वी पर सीधी पड़ती हैं। हमारे शरीर पर तेज गर्मी का विकृत असर न पड़े और मन पर प्रतिकूलता के प्रहार क्षोभ उत्पन्न न कर सकें इसलिए पलाश के पुष्पों का रंग एक-दूसरे के शरीर पर लगाने की परंपरा है। अभी भी वसंत ऋतु में जो लोग ये रंग लगाते हैं वे सामान्य निगुरे लोगों की अपेक्षा कम बीमार पड़ते हैं और कम क्षुब्ध होते हैं। उसका फायदा सूरत में होलिकोत्सव पर सज्जन साधकों ने लिया। लेकिन इंदौर व अमदावाद क्यों बाकी रह जायँ ? वहाँ भी पलाश के पुष्पों के रंग, गंगाजल व गुरु की ज्ञानगंगा के वातावरण में वसन्तोत्सव संपन्न हुआ। ज्ञानभरी पिचकारी के साथ पलाश के पुष्पों के रंग की पिचकारियों का यह पर्व देखते ही बनता था। इस प्रकार विभिन्न स्थानों पर संतश्री के सान्निध्य में होली संपन्न हुई। रंग से रँगे तन, साधना व ध्यान से रँगे मन। एक नई स्मृति लिये, ताजगी व उत्साह का खजाना लिये इन्दौर आश्रम की ध्यानयोग साधना शिविर ने मध्य प्रदेश व देश भर से आये हुए साधकों के दिल पर अमिट छाप छोड़ी।

अमदावाद आश्रम : ४ से ६ अप्रैल। जाबल्य ऋषि की प्राचीन तपःस्थली पर स्थित आज के संत श्री आसारामजी आश्रम में चेटीचंड ध्यानयोग साधना शिविर अंतरंग अनुभवों से संपन्न हुआ।

चेटीचंड महोत्सव के अवसर पर गंगाजल मिश्रित पलाश के फूलों का रंग बनाया गया था। सूरत व इन्दौर की तरह यहाँ भी होलिकोत्सव का सुहावना दृश्य दृष्टिगोचर हुआ।

बुलंदशहर (उ. प्र.) : १२ से १५ अप्रैल। प्रथम दो दिन श्री नारायण साँईं और श्री सुरेशानंदजी के प्रवचन व अंतिम दो दिन पू. गुरुदेवश्री के सत्संग-प्रवचन संपन्न हुए। पू. गुरुदेवश्री ने बुलंदशहर के बुलंद श्रोताओं को अपनी अनुभवसंपन्न बुलंदवाणी में कहा : ''**सेठ, सत्तावान्, मंत्री न बन सको तो कोई बात नहीं, पर सत्संगी बने रहना। जिसके जीवन में सत्संग नहीं, वह अभागा है।**''

सत्संगी जज व सेवाभावी कार्यकर्त्ताओं को पूज्यश्री ने साधुवाद दिया। संत व समाज के बीच सेतु का कार्य करनेवाले ऐसे साधकों को पूज्य गुरुदेवश्री ने **'पृथ्वी के देवता'** की संज्ञा दी।

पानीपत : १५ से १८ अप्रैल। प्रथम दिन श्री सुरेशानंदजी के प्रवचन व बाद में तीन दिन प. पू. गुरुदेवश्री के पावन सान्निध्य में सत्संग व पूर्णिमा दर्शनोत्सव का कार्यक्रम संपन्न हुआ।

इलाहाबाद (उ. प्र.) : २० से २३ अप्रैल। ऐतिहासिक भूमि प्रयागराज (इलाहाबाद) के ऐतिहासिक स्थल कंपनी बाग में चार दिवसीय सत्संग समारोह संपन्न हुआ। पूज्यश्री ने यहाँ ज्ञान-भक्तियोग की त्रिवेणी बहाई जिसमें अवगाहन कर भक्तों ने धन्यता का अनुभव किया। यहाँ गंगा-यमुना संगम पर हर १२ वर्ष में कुम्भस्नान का पर्व होता है। प्रत्येक कुम्भ के बीच

६ वर्षों में अर्धकुंभ का मेला भी यहाँ लगता है। इसी परंपरा में अगले वर्ष सन् २००१ में कुंभस्नान का पर्व इसी ऐतिहासिक भूमि पर आयोजित होगा।

सत्संग समारोह में उच्च न्यायालय, इलाहाबाद के अनेक न्यायाधीशों ने कहा : ''आज तक टी. वी. पर देखते थे, अब बापू को रू-बरू देखा-सुना।''

अपने अनुभव-उद्गार उन्होंने इस प्रकार कहे :

अलौकिक विलक्षण प्रासादिक प्रतिभा के योगी पूज्य बापू

''दैवी शिखर पर विराजमान परम श्रद्धेय संत श्री आसारामजी बापू के प्रवचनों से मेरा अगाध प्रेम लगभग एक दशक से रहा है। व्यक्तिगत रूप से उनके श्रीचरणों में नमन करने का शुभ अवसर देहरादून में सन् १९९७ में प्राप्त हुआ था। ऐसे निःस्पृह, चिरसुखी, सदा सन्तुष्ट, प्रफुल्लमुख, प्रशान्तमूर्ति, नेत्रों से मानों विद्युत्प्रकाश प्रस्फुटित हो रहा हो ऐसे पुरुष से साक्षात्कार कभी नहीं हुआ। बापूजी निःसंदेह अलौकिक व विलक्षण प्रासादिक प्रतिभा के योगी हैं। धार्मिक, आध्यात्मिक एवं व्यावहारिक क्षेत्रों में अद्भुत विचारक व प्रचारक हैं। व्यावहारिक जीवन में उनकी कई उक्तियाँ, दृष्टांत एवं नुस्खे युक्तिसंगत व उपयोगी सिद्ध हुए हैं। शक्ति, भक्ति एवं मुक्ति के मार्ग, भयमुक्त समरसता के जीवन एवं हिन्दू संस्कृति व संस्कारों पर लगे संक्रमण काल-योग से निकलने की विधियों में श्रोताओं को सहज रूप से ले जाने की कला बापूजी के लिये खिलौनामात्र है। बापूजी के व्यक्तित्व की एक सन्निकट झाँकी शीतलता प्रदान करती है। बापूजी की बृहत् साहित्य-सामग्री, लेखपत्र, सम्भाषण व कैसेटों का संचयन किया जा चुका है। इस संचयन द्वारा उनके व्यक्तित्व एवं बहुमुखी प्रतिभा की पर्याप्त झलक मिल सकती है और साथ ही साथ अनेकानेक महत्वपूर्ण विषयों पर उनके विचार भी जाने जा सकते हैं।

बापू के विचार-श्रवण हेतु जनमानस उमड़ पड़ता है। श्रोतागण विविध रसों के रूप में उनके विचारों का आस्वादन करते हुए आनन्द के अपार सागर में गोते लगाते दिखाई देते हैं। श्रोता समुदाय पूर्ण लगाव, मानसिक स्थिरता, एकाग्रता व शांत चित्त से बापूजी के प्रवचनों को आत्मसात् करता है। उनके द्वारा उच्चारित भजनों पर प्रत्येक श्रोता झूमने व थिरकने लगता है। कैसा अविस्मरणीय दृश्य होता है प्रवचन-पंडाल में ! न कभी ऐसा देखा न सुना। विगत दिवसों में बापूजी के प्रवचन प्रयाग नगरी (इलाहाबाद) में हुए। स्थानीय दैनिक समाचार पत्र **'अमर उजाला'** दिनांक : २२ अप्रैल २००० में प्रकाशित समाचार अत्यन्त प्रासंगिक है।

''संगम की नगरी प्रयाग में आसारामजी बापू ने ज्ञान, भक्ति और योग की त्रिवेणी प्रवाहित की। उन्होंने गीता के माध्यम से निर्भय, निष्कल्मष जीवन जीने के गूढ़ रहस्यों को उद्घाटित कर जनमानस को अभिभूत कर दिया। इस सत्संग का प्रभाव कुछ इस कदर था कि पचासों हजार श्रद्धालु श्रोताओं के बीच केवल ब्रह्मवेत्ता संतश्री की वाणी की अनुगूँज पांडाल में व्याप्त थी। पूरा वातावरण प्रशांत था और लोग मंत्रमुग्ध थे। बीच-बीच में बापूजी के निर्देश पर 'हरि ओम...' के उद्घोष पर यह नीरवता टूटती थी।''

२५ अप्रैल बापूजी की पुण्य जन्मतिथि है। इस अवसर पर उन्हें कोटिशः प्रणाम ! परम पिता परमेश्वर से प्रार्थना है कि बापूजी शतायु हों ताकि राष्ट्र का सुख-संवर्धन होता रहे व जनमानस उनके कृपा-प्रसाद से परिप्लावित होता रहे।''

- न्यायमूर्ति श्री ओ. पी. गर्ग

२८, जजेज कोलोनी, इमण्ड रोड, इलाहाबाद।

सम्पूर्ण मानव समाज पूज्य बापू का ऋणी रहेगा

''धर्म व सत्संस्कार से ही मानव मानव बनता है। धर्म की रक्षा से ही मानव समाज रक्षित रहता है। **'धर्मो रक्षति रक्षितः।'** धर्म के अभाव में मानव व पशु में अंतर समाप्त हो जाता है। **'धर्मेण हीना पशुभिः समाना।'** पूज्य बापूजी धर्माचरण व सत्संस्कार हेतु जो कार्य अपने आशीर्वचनों द्वारा कर रहे हैं उसके लिए सम्पूर्ण मानव समाज उनका ऋणी रहेगा। मानवता की सेवा इससे बढ़कर और क्या हो सकती है ? **'ऋषि प्रसाद'** सामयिक के माध्यम से बापूजी का जो संदेश प्रचारित हो रहा है उससे सम्पूर्ण मानव समाज लाभान्वित हो रहा है। **'ऋषि प्रसाद'** आनेवाली पीढ़ी का एक सच्चा मार्गदर्शक है।''

- न्यायमूर्ति श्री उमाशंकर त्रिपाठी

नई दिशा देनेवाली समन्वयवादी महान् ज्योति : पूज्य बापू

''संतशिरोमणि श्रीयुत आसारामजी बापू भारत की महान् ज्योति हैं। उनकी ज्योति जन-जन के मानस को ज्ञान-भक्ति से प्रकाशित करती है। वे सर्वदर्शी, समन्वयवादी हैं। उनका दृष्टिकोण लोक-परलोक का समन्वय, सर्वधर्म का समन्वय एवं जीवन के सर्वांगीण विकास का समन्वय है। उनकी सरल, सहज वाणी मानस और हृदय को नई दिशा देती है।''

- न्यायमूर्ति श्री सुधीर नारायण

उच्च न्यायालय, इलाहाबाद।

केवल संत ही नहीं वरन् राष्ट्र-निर्माता : पूज्य बापू

''दर्शन शास्त्र, पुराण, गीता और संतों के अनुभव कहने की बापूजी की सरल शैली सभी श्रोताओं को गद्गद् कर देती है। उनके जीवन में श्रद्धा की सुवास व ज्ञान का प्रकाश बापूजी के सत्संग द्वारा देखा गया। ऐसा सत्संग सुनकर बड़ी प्रसन्नता हुई।

बापू के उपदेशों में राष्ट्रीय भावना को प्रेरित करने के उनके प्रयास के लिए मैं उन्हें केवल संत ही नहीं वरन् राष्ट्र-निर्माता के

रूप में वंदनीय मानता हूँ। २५ अप्रैल, २००० को उनकी जन्मतिथि पर बापू को चिरायु होने की मंगल कामनाएँ...''

- न्यायमूर्ति श्री अजय कुमार योग
९, योगेन्द्रपुरी, न्यायमार्ग, इलाहाबाद।

भक्ति, शक्ति और मुक्ति के सूत्रप्रदाता : पूज्य बापू

''संतशिरोमणि श्रीयुत आसारामजी बापू के वचन 'भक्ति, शक्ति और मुक्ति' एक महत्त्वपूर्ण सूत्र की ओर इंगित करते हैं। 'भक्ति' और 'मुक्ति' के बीच 'शक्ति' आती है। शक्ति (रिद्धि-सिद्धि) मुक्ति में बाधक होती है। 'मुक्ति' के लिए भक्त को अपनी अनन्य भक्ति द्वारा शक्ति का अतिक्रमण करना होता है, जो बापू जैसे ब्रह्मविद्वरिष्ठ परम संतों का सत्संग करने से ही सम्भव हो सकता है। वास्तव में बापू जैसे समत्व योग में प्रतिष्ठित संतों के अनुकरण-अनुसरण से ही विश्वशांति स्थापित हो सकती है और विज्ञान पर अध्यात्म का नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है।'' *- न्यायमूर्ति श्री एस. आर. सिंह*

श्री मुरलीमनोहर जोशीजी बापू के आने के पहले ही श्रोताओं के बीच सत्संग सुनने हेतु आ बैठे। सरल स्वभाव के इन सज्जन नेता ने पुष्पमालाओं एवं अपने वचनों से बापूजी का खूब अभिवादन किया।

लखनऊ (उ. प्र.) : २५ से २७ अप्रैल। २४ अप्रैल को पूज्यश्री का एकान्तवास निर्धारित होने पर भी लखनऊ के प्रभुप्रेमियों ने अपनी सत्संग-प्रीति से प्रार्थना करके २४ अप्रैल को भी बापूजी का लाभ उठाया।

उत्तर प्रदेश की राजधानी लखनऊ में मुक्तात्मा महापुरुष के जन्मोत्सव पर उमड़े जनसैलाब ने लखनऊ व लखनऊ मिलिट्री कैंट की सड़कों को, लखनऊवासियों के दिलों को इस दिलबर दरवेश के रंग से रँग डाला।

जनताजनार्दन व उत्तर प्रदेश के राज्यपाल महामहिम श्री सूरजभान सिंहजी २५ तारीख के प्रातः की बाट देख रहे थे, बापूजी को बधाई देने के लिए। ५९ दीप तो जले अंधकार से उजाले की तरफ ले जाने की प्रेरणा देनेवाले, प्रभुमय जीवन जीने की प्रेरणा देनेवाले।

केक काटने, दीप बुझाने के पाश्चात्य अंधानुकरण करनेवालों को नई दिशा मिली जन्मदिवस मनाने की।

गैस के गुब्बारे व पिंजड़े में पड़े लखनऊ के बहुत सारे कबूतरों को इस उत्सव पर गगनगामी किया गया। सत्संग, स्नेह-प्रसाद और **'जन्म कर्म च मे दिव्यम्...** मेरा जन्म और कर्म दिव्य है ऐसा जो जानता है वह मुझे पा लेता है।' श्रीकृष्ण के इन वचनों की व्याख्या करते हुए पूज्यश्री ने बताया कि अपने कर्मों से अहंता, ममता, लिप्सा, फलासक्ति हटाने से अपने कर्म दिव्य बनते हैं। पंचकोषों से न्यारे, तीनों शरीरों से न्यारे, अपने प्यारे सच्चिदानंदस्वरूप को पहचानना ही अपने जन्म को दिव्य बनाना है। इस प्रकार भगवान व भगवत्प्राप्त महापुरुषों के जन्मदिवस व जयंतियाँ मनाने से गजब का लाभ लोगों को महसूस हुआ।

अद्भुत... अद्भुत... अलौकिक... अलौकिक जन्मोत्सव व कर्म दिव्य... दिव्य...

आगामी कार्यक्रम

पूज्य श्री श्री माँ लक्ष्मीदेवी के पावन सान्निध्य एवं रेखा बहन के संचालन में पंचेड़ (रतलाम-म. प्र.) आश्रम में केवल महिलाओं के लिए मौन साधना शिविर : ६ से १४ मई २०००. स्थान : संत श्री आसारामजी आश्रम, पंचेड़ (नामली), जि. रतलाम। फोन : (०७४१२) ८१२६३, ८१२९१.

नई टिहरी-हिमालय में पूर्णिमा दर्शन एवं सत्संग-कार्यक्रम

दिनांक : १६, १७, १८ मई २०००. समय : सुबह ९-३० से १२ दोपहर २-३० से ४-३०. स्थान : बोराड़ी स्टेडियम ग्राउण्ड, नई टिहरी, हिमालय। फोन : (०१३७६) ३२१७५, ३२१८२, ३२५२४.

यह स्थान गुप्त रखा गया था किन्तु उत्तर काशी, गंगोत्री, जमनोत्री जानेवालों को सत्संग का लाभ मिले इस हेतु टिहरीवासियों के अनेक प्रयासों-प्रार्थनाओं के बाद पूज्यश्री ने हिमालय के इस सुरम्य वातावरण में पूनम दर्शन व्रतधारियों के लिए तीन दिन का समय निकाला है।

जो पूनम व्रतधारी इस सुअवसर का लाभ लेना चाहते हैं, वे नई टिहरी जा सकते हैं। अन्यथा, अपने नजदीकवाले आश्रम में जाकर भी अपना पूनम दर्शन का व्रत संपन्न किया जा सकेगा। सत्संग-स्थल पर भोजन एवं निवास की व्यवस्था है लेकिन ठंड से सुरक्षा हेतु अपना गर्म स्वेटर, मफलर, टोपी, कम्बल इत्यादि पहनने-ओढ़ने-बिछाने का पर्याप्त साधन साथ में ले जाना होगा।

हृषीकेश से नरेन्द्रनगर-चम्बा होते हुए नई टिहरी जाया जा सकता है। वहाँ से उत्तर काशी, गंगोत्री, जमनोत्री का रास्ता भी मिल सकता है।

हृषीकेश से ६० कि.मी. पर चम्बा है और चम्बा से १० कि.मी. पर नई टिहरी है। हृषीकेश से बस से सीधे नई टिहरी जाने के ४५ रूपये लगते हैं और जीप द्वारा जाना हो तो चम्बा होकर जा सकते हैं। हृषीकेश से चम्बा जीप के ४५ रूपये लगते हैं और चम्बा से नई टिहरी के १० रूपये लगते हैं।

बदरीनाथ से लौटते समय बीच में टिहरी का रास्ता मिल सकता है। पुरानी टिहरी का रास्ता लम्बा हो सकता है अतः **पुरानी टिहरी नहीं जाना है।**

POSTING FROM AHMEDABAD 2-10 OF EVERY MONTH. POSTING FROM MUMBAI 3, 9 & 15 OF EVERY MONTH. POSTING FROM DELHI 10-11 OF EVERY MONT

अवतरण दिवस का वंदन है... गुरुदेव ! कोटि अभिनंदन है...

DELHI REGD. NO. DL-11513/2000 PSO LIC. NO.-U(C) 232/
R.N.I. NO. 48873/91 W.P.P LIC. NO. 207 GAMC/1132/
MUMBAI, BYCULLA PSO. LIC. NO. 03 REGD NO. MH/MNV-02/

परम पूज्य बापू का ५९ वाँ शुभ जन्मदिवस है आया, वसुधा अंबर तरुवर गिरिवर में आनंद समाया।
लखनऊ में पूज्यश्री के ५९ वें जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में आयोजित सत्संग-सरिता में अवगाहन करती हुई विशाल जनमेदनी

पूज्यश्री ने जन्मदिवस पर विश्वशांति के संदेशवाहक कबूतरों को गगनगामी कर विश्वशांति का संदेश फैलाया।

लखनऊ में आयोजित सत्संग-कार्यक्रम में पूज्यश्री की अमृतवाणी का तन्म से श्रवण करते हुए उत्तर प्रदेश के राज्यपाल महामहिम श्री सूरजभानज

पानीपत (हरियाणा) में पूज्यश्री की ज्ञानगंगा में गोते लगाते हुए गुरु के प्यारे भक्त।